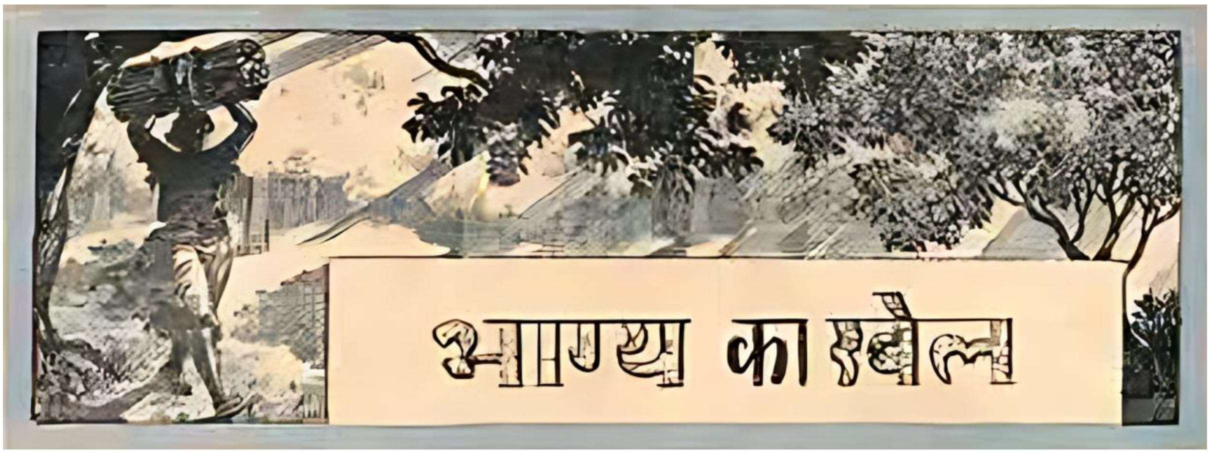
चन्दामामा

माँ - बच्चों का मासिक पत्र



6



एक जमाना था, जब बुन्देलखण्ड में ठाकुर वंश के राजा राज्य करते थे। परन्तु उस वंश से सम्बन्धित रूपसिंह बहुत ही गरीब था। धन और सम्पत्ति तो अलग, इस संसार में उसका कोई खास बन्धु भी न था। उसकी सम्पत्ति कुल मिलाकर थी:- फटे फुराने चीथडे, दो टाट और एक कुल्हाड़ी।

उस कुल्हाड़ी से रूपसिंह सबेरे से दो पहर तक जङ्गल में लकड़ी काटता और शाम को तीन रुपये में उन्हें बेच देता था। उसमें से दो रुपये धोवियों को देकर यह राजा-महाराजाओं की पोशाक किराये पर लेता, और एक रुपये से वह एक घोड़ा किराये पर लेता। उस पोशाक को पहन घोड़े पर चढ़ खूब तेजी से, शहर की बड़ी बड़ी सड़कों पर शान से मटरगश्ती करता। हट्टे-कट्टे खूबसूरत नौजवान को देखकर लोग सोचा करते कि वह कोई राजा है। इस प्रकार रोज रूप सिंह ठाकुर वंश की मान-मर्यादा को बनाये रखता। अन्धेरा होते ही पोशाक और घोड़ा वापिस दे, अपने मामूली कपड़े पहन, थोड़े से चने वगैरह खा, पानी पीकर पेट भर लेता। फिर एक टाट बिछाकर और एक ओर ओढ़ कर सो जाता।

जब एक बार रूपसिंह जङ्गल में लकड़ियाँ काट रहा था, तब उसको पास से कोई सुगन्धि आई। पास जाकर देखा, तो वहाँ एक चन्दन का पेड़ था। रूपसिंह ने कुल्हाड़ी से एक हाथ चन्दन का टुकड़ा काटा, और रोज़ की तरह लकड़ियाँ काट कर साँझ होते होते शहर वापिस आ गया। शाम को जब रूपसिंह राजा की पोशाक

एस. पी. श्रीवास्तव



पहनकर घोड़े पर चढ़ हवा से बातें कर रहा था, शहर की गली में उसके सामने एक परदेशी व्यापारी आया। "नमस्ते, महाप्रभू!" उसने सविनय कहा।

"तू कौन है ?" रूपसिंह ने बड़े रौब से पूछा।

"प्रभू! मैं व्यापार करता रहता हूँ। आपके देश में व्यापार पूरा कर लङ्का जा रहा हूँ।" परदेशी व्यापारी ने सविनय निवेदन किया।

रूपसिंह ने थोड़ी देर तक कुछ सोचा, फिर जेब में से चन्दन का टुकड़ा निकालकर परदेशी को देते हुये कहा-"इसे ठाकुर रूपसिंह की तरफ से लङ्का के राजा को तोहफे के रूप में देना। तुम्हारा काम बन जायगा।" उसने घोड़े को ऐंड लगाई, और तेज़ी से चला गया।

व्यापारी ने रूपसिंह के उपहार को के राजा के पास पहुँचा दिया। चन्दन का टुकड़ा कभी लङ्का के राजा ने नहीं देखा था। वह उसको देखकर बड़ा चकित और आनन्दित हुआ। उसने केवल व्यापारी की आवभगत ही की, बल्कि उसके व्यापार के लिये हर इन्तजाम कर दिया। जब व्यापारी लङ्का छोड़कर जाने लगा तो राजा ने रूपसिंह के लिये जवाहरातों से जड़ी खड़ाऊँओं का जोड़ा भेजा। वह व्यापारी वापिस आकर नगर में जब रूपसिंह की प्रतिक्षा कर रहा था, तो रूपसिंह घोड़े पर उस तरफ से निकला।

"नमस्ते महाप्रभू!" व्यापारी ने कहा। "तू कौन है?" रूपसिंह ने घोड़ा रोक कर शान से पूछा।

"महाप्रभू। मैं एक परदेशी व्यापारी हूँ। आपका भेजा हुआ उपहार मैने लङ्का के राजा को दे दिया था। उन्होंने आपके

लिये ये खड़ाऊँ मेजी हैं।" व्यापारी ने कहा।

"तू अब किस देश को जा रहा है?" रूपसिंह ने पूछा।

"अरब देश को जा रहा हूँ।" परदेशी व्यापारी ने बताया।

"तो अरब देश के बादशाह को हमारी तरफ से यह खड़ाऊँ उपहार में देना। तुम्हारा काम बन जायगा।" यह कह रूपसिंह घोड़े पर चला गया।

व्यापारी ने रूपसिंह के कथनानुसार काम किया। जब अरब देश के बादशाह ने कीमती खड़ाऊँ देखी तो उसने सोचा कि वैसा उपहार कोई बहुत घनी और शक्तिशाली राजा ही भेज सकता है। अरब देश के घोड़े बहुत प्रसिद्ध हैं और अच्छे होते हैं। अच्छे घोड़ों में से बादशाह ने सौ घोड़े छाँटकर व्यापारी को दे दिये।

"रूपसिंह ठाकुर से हमारा सलाम कहना, और ये सौ घोड़ों का तोहफा उनको हमारी तरफ से पहुँचा देना।" बादशाह ने व्यापारी से कहा।

व्यापारी उन सौ घोड़ों को साथ ले आया और पहले की तरह रूपसिंह



की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद रूपसिंह घोड़े पर चढ़ तेज़ी से आया और व्यापारी को देखकर रुका।

व्यापारी ने सौ घोड़ों को दिखा कर कहा-"महा प्रभू! अरब के बादशाह ने इन घोड़ों को आपके पास भेजे है।"

"तू अब किस देश को जा रहा है?" रूपसिंह ने पूछा।

"मैं फिर लङ्का जा रहा हूँ।" व्यापारी ने कहा।

"तब इनको ले जाओ और लङ्का के राजा को हमारी तरफ से दे देना।" यह

कहकर रूपसिंह चला गया। व्यापारी ने लङ्का के राजा को सौ घोड़े देकर निवेदन किया कि वे ठाकुर रूपसिंह के उपहार हैं।

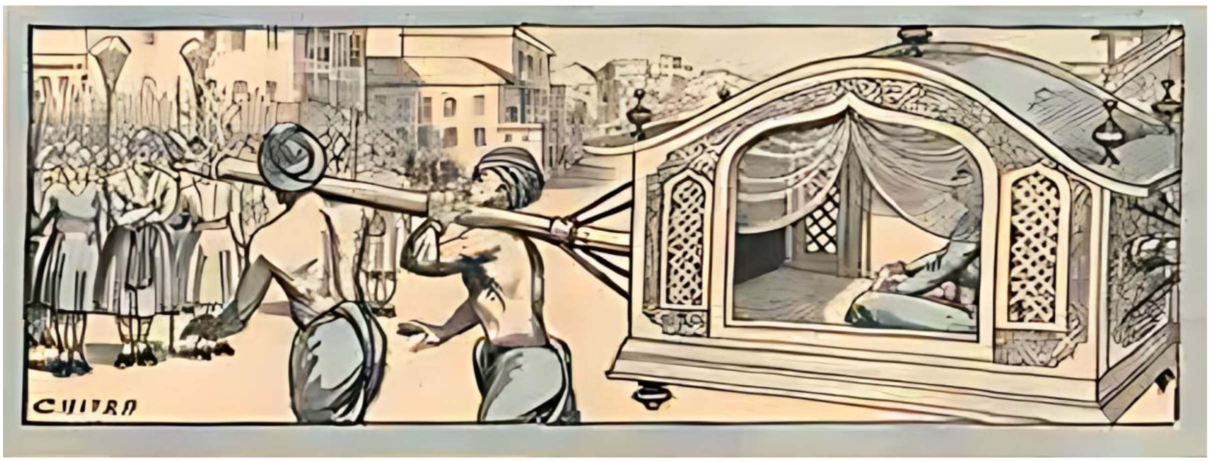
उपहार देखते ही राजा का हृदय बल्लियों कूदने लगा। रूपसिंह के उपहार तो कीमती हैं ही, उसका स्नेह तो उससे कहीं अधिक अमूल्य होगा; उसने सोचा। व्यापारी से रूपसिंह के शक्ल-सूरत के बारे में जानकर उसने अपनी इकलौती पुत्री का उससे विवाह करने का निश्चय किया। रूपसिंह के लिये राजोचित पोशाक, आभूषण वगैरह देकर उसने कई नौकर-चाकरों को व्यापारी के साथ भेजा।

रूपसिंह का ठिकाना आदि, व्यापारी को नहीं मालूम था। इसलिये उन लोगों को उसी जगह खड़ा किया, जहाँ वह स्वयं रूपसिंह की प्रतीक्षा किया करता था। शाम को रूपसिंह घोड़े पर आया।

व्यापारी ने रूपसिंह को लङ्का के राजा का सन्देश सुनाया। रूपसिंह ने लङ्का राजा द्वारा भेजे हुये आभूषण, कपड़े लेकर कहा कि वह कल इसी समय इसी जगह पर मिलेगा और चला गया।

तब लङ्का के राजा द्वारा भेजे हुये कपड़े और आभूषण पहनकर, और उस दिन बेचे हुये लकड़ियों के पैसों से एक पालकी लेकर उस पर चढ़ वह उस जगह पर गया। वहाँ उसके लिये व्यापारी और लङ्का राजा के नौकर-चाकर तैयार खड़े थे। सब मिलकर लङ्का देश के लिये रवाना हुये।

लङ्का की राजकुमारी का विवाह रूप-सिंह से बड़े धूमधाम से हुआ। लङ्का के राजा का कोई लड़का तो था नहीं, इसलिये कुछ समय बाद रूपसिंह लङ्का की गद्दी पर बैठा।





एक गाँव में रामदयाल नाम का एक व्यक्ति रहा करता था। उसका न कोई निजी सम्बन्धी था, न घरवार ही। इसलिये एक किसान की लड़की से विवाह कर वह ससुराल में ही रहा करता था।

रामदयाल की पत्नी सुमति एकदम मूर्ख थी। उसकी माँ रामप्यारी भी कोई अक्लमन्द न थी। एक दिन सुमति ने अपने बच्चे को हमेशा की तरह नहलाया-धुलाया, कपड़े पहनाये, आँखों में सुरमा लगाया, सिर पर तेल लगा कर, झूले में झूला देने लगी। लोरियाँ गाने लगी। गाती गाती उसने बच्चे को झुलाना बन्द कर दिया और "अब मैं क्या करूँ" कह कह कर रोने लगी।

रोना-धोना सुन, पिछवाड़े में काम करती रामप्यारी भागी मागी आई, और अपनी लड़की को रोता देखकर उसने घबराते हुये पूछा "क्या हो गया बेटी ? जल्दी बताओ।" सुमति ने और जोर से रोते हुए ऊपर अटारी पर रखे सन्दूक को दिखा कर कहने लगी-"मान लो, चूहों का पीछा करती करती वहाँ एक बिल्ली आ गई और उसका पैर लग सन्दूक नीचे गिर गया, तब मेरे बेटे का क्या होगा ?" वह खूब जोर- जोर से रोने लगी।

"सच है। तेरे लड़के पर कितनी भारी आफत आ पडी है।" कह रामप्यारी भी अपनी लड़की के साथ रोने-धोने लगी।

जब माँ और बेटी इस तरह रो रही थीं, बाहर से रामदयाल आ पहुँचा। उनके रोने का कारण सुनकर वह आग बबूला हो गया।

"दुनियाँ में बहुत से बेवकूफों को देखा है; पर तुम माँ-बेटी जितना बेअक्ल मैने



कहीं नहीं देखा। में अभी यहाँ से जाता हूँ। अगर मुझे इस दुनियाँ में तुम से अधिक कोई मूर्ख दिखाई दिया, तो वापिस आ जाऊँगा, वरना तुम्हारा मुँह भी न देखूँगा।" यह कहकर रामदयाल घर से चला गया।

एक दिन सवेरे वह एक गाँव में पहुँचा। गाँव के बाहर रामदयाल को एक अधेड़ आदमी दिखाई दिया। उसके हाथ में एक छोटी-सी टोकरी थी। वह उस टोकरी को सूर्य को दिखाकर घर में जाता, फिर बाहर आकर टेकरी को सूर्य की तरफ दिखाता। इस तरह उस व्यक्ति को घर के अन्दर-बाहर जाता देख, रामदयाल ने पूछा-"क्यों भाई ! यह क्या काम कर रहे हो?"

"घर में दिन-रात अन्धेरा रहता है। टोकरी में प्रकाश भरकर घर में डाल रहा हूँ। तीन दिनों से घर में कितनी ही टोकरियाँ रोशनी की डाली। मगर कोई फायदा नहीं हुआ।" उस अधेड़ आदमी ने जवाब दिया। उसकी बेवकूफ़ी को देख कर रामदयाल ने पूछा-"तुम्हारे घर में हथौड़ा है ? हो तो जरा यहाँ लाना।"

रामदयाल ने ठोक ठोककर घर की दीवार में एक छेद कर दिया।

"अब देखो, तुम्हारे घर में कैसी रोशनी आ रही है।" रामदयाल ने कहा।

रामदयाल फिर घूमने निकला। घूमते- घूमते वह एक गाँव में पहुँचा। उस गाँव में एक बढ़ई ने घर की ड्योढ़ी को गिरवा देने के लिये मजदूरों को बुला रखा था।

"अरे! यह तो अच्छी, मजबूत ड्योढ़ी नज़र आती है। क्यों तुड़वा रहे हो ?" रामदयाल ने बढ़ई से पूछा।

"क्या करूँ भाई? पहिये, धुर, सब कुछ तैयार कर गाड़ी बनाई, पर वह तङ्ग ड्योढ़ी से बाहर नहीं निकाली जा सकती।

इसीलिये मज़दूरों को बुलाकर ड्योढ़ी गिरवा रहा हूँ।" बढ़ई ने कहा।

अरे पागल हो गये हो क्या ? सिर्फ इसी लिये अच्छी, पक्की ड्योढ़ी तुड़वा रहे हो? गाड़ी का एक एक हिस्सा अलग कर लो और बाहर ले जाकर मिला लो। फिर गाड़ी तैयार हो जायगी।" रामदयाल ने कहा।

रामदयाल की अक्लमन्दी देख बढ़ई को आश्चर्य हुआ। मजदूरों को भेजकर, रामदयाल के कहने के अनुसार उसने अपना काम पूरा कर लिया। फिर कुछ दूर जाने पर रामदयाल को एक बड़ा ही विचित्र दृश्य दिखाई दिया। उसे देख रामदयाल हँसी न रोक सका। एक चौपाल में एक आदमी अटारी पर बैठा हुआ था। नीचे एक गाय थी। उसके गले में बँधी हुई रस्सी ऊपर बैठे हुये आदमी के हाथ में थी। वह रस्सी को जोर से खींचता जाता और कहता जाता-"आ, ऊपर आ। कितने दिन बिना कुछ खाये भूखी मरेगी। चार दिनों से भूखी मर रही है। अब भी अक्ल नहीं आई।"

रामदयाल ने हँसी रोककर पूछा- "क्यों भाई ! क्या कर रहे हो? क्यों इस तरह गाय को सता रहे हो?"



"देखिये साहब! चार दिन पहले मैंने इस गाय को खरीदा था। उसके लिये चारा खरीद कर मैंने होशियारी से अटारी पर रखा है। ऊपर आकर खाने के लिये कह रहा हूँ। पर वह हिलने का नाम नहीं लेती। अगर इसकी यह ज़िद रही, तो मुझे नहीं मालूम, यह कैसे जिन्दा रहेगी।" अटारी पर बैठे आदमी ने बताया।

"तू तो बड़ा बेवक़ूफ़ नजर आता है। कहीं गौवें अटारी पर चढ़ती हैं? तुझे अटारी में से भुस लाकर गाय को नीचे खिलानी चाहिये।" राम दयाल ने कहा।

अटारी पर बैठे उस आदमी को यह छोटी सी बात चार दिन से नहीं सूझी थी। वह तुरन्त अटारी पर से उतर, गौ के सामने घास-फूस रखने लगा। गौ भी उसको खाने लगी। गाय का मालिक रामदयाल के पैरों पर पड़ कहने लगा-"भाई आपने मेरी गौ और मेरी रक्षा की है। मैं आपका उपकार कभी न भूलूँगा।"

तब रामदयाल मन ही मन यों सोचने लगा-"संसार में इतने मूर्ख भी हैं, यह मुझे नहीं मालूम था। टोकरी में भर प्रकाश फेंकनेवाले, गाड़ी बाहर लाने के लिये दरवाज़ा तुड़वानेवाले, गाय को खिलाने के लिये अटारी पर चढ़ानेवाले व्यक्तियों से मेरी पत्नी कोई कम अक्लमन्द नहीं है। अगर सच पूछा जाय तो बिल्लियाँ अटारी के ऊपर से चीजें गिराती ही रहती हैं। अगर सचमुच उतने ऊपर से सन्दूक गिर पड़े तो बच्चे को खतरा है।"

यह बात सोचते ही रामदयाल के कदम घर की तरफ पड़ने लगे और बाद में वह पत्नी-पुत्र के साथ आराम से रहने लगा।





कोसल देश में तीन मित्र रहा करते थे। उनमें से दो नन्द और सुनन्द धनी थे और तीसरा; आनन्द बहुत ही निर्धन था। वह रस्सी पेलकर जीवन निर्वाह किया करता था। नन्द और सुनन्द ने, कुछ भी हो, उसे भी धनी बनाने की ठानी।

"अगर थोड़ी बहुत पूँजी हो, तो कोई भी घनी हो सकता है। इसलिये आनन्द को थोड़ा पैसा दिया जाय तो अच्छा होगा।" नन्द ने कहा।

"कितने धनी गरीब नहीं हो रहे हैं ! यदि भाग्य ने साथ दिया, तो बिना पूँजी के भी लोग धनी हो जाते हैं।" सुनन्द ने अपना विचार प्रकट किया।

यह दिखाने के लिये कि उसकी ही बात सही है, नन्द ने अगले दिन आनन्द को दो सौ अशर्फियाँ दीं। उसने आनन्द से उस पूँजी को लगाकर पैसा कमाने के लिये कहा। उनमें से दस अशर्फियाँ खर्च के लिये निकाल और बाकी पगड़ी में बाँध जरूरी चीजों को खरीदने के लिये बाज़ार की तरफ चल पड़ा। बदकिस्मत की बात है, तब यकायक कहीं से कोई चील आई और आनन्द की पगड़ी में कुछ लिपटा पा उसे उड़ा ले गई। एक सौ नब्बे अशर्फियाँ आनन्द इस तरह खो बैठा।

कुछ दिनों बाद नन्द और सुनन्द आनन्द के घर आये। उसकी परिस्थिति में कोई परिवर्तन न पा, उन्होंने उससे कारण पूछा।

"मेरा भाग्य अच्छा नहीं है। सारी अशर्फियाँ मैंने अपनी पगड़ी में रख ली थीं। परन्तु कोई चील आई और मेरी पगड़ी अचानक उड़ा ले गई।" आनन्द ने दुःख के साथ कहा।

महावीर प्रसाद



उसकी बात पर नन्द को तो विश्वास हो गया। पर सुनन्द को यकीन न हुआ। उसको सन्देह हुआ कि आनन्द ने पैसा फजूल खर्च कर दिया होगा। परन्तु नन्द ने फिर उसको दो सौ अशर्फियाँ देते हुये सलाह दी-"कम से कम इस बार इसे कहीं लगाकर खूब पैसा कमाना।"

आनन्द ने फिर जितनी अशर्फियाँ उसको निजी काम के लिये जरूरी थीं, अलग रख ली, और बाकी उसने भुस की टोकरी की तह में सम्भालकर रख दी। जरूरी चीजें खरीदने के लिये बाज़ार की ओर चल पड़ा। जब वह वापिस घर आया तो उसको भुस की टोकरी दिखाई न दी। पत्नी से पूछा।

"नमक बिकने के लिये आया था। पास पैसा न था। इसलिये भुस की टोकरी बेच मैने दो सेर नमक खरीद लिया।" आनन्द की पत्नी ने कहा। आनन्द को बहुत दुःख हुआ।

कुछ दिनों के बाद नन्द और सुनन्द ने उसके घर आ गुज़री हुई घटना के बारे में सुना। आनन्द पहले से भी अधिक गरीब दिखाई दिया। उसके कपड़े फटकर चीथड़े हो गये थे। जब उन्होंने कारण पूछा तो उसने कहा कि घर में सूई नहीं है।

सुनन्द ने तभी तभी बाज़ार में सुईयाँ खरीदी थीं। उनमें से एक सूई आनन्द को देते हुए कहा-"जा, इसे ले जाकर अपनी पत्नी से कपड़े की मरम्मत करवा ले।" बाद में नन्द और सुनन्द चले गये।

उसी दिन रात को पड़ोस में रहनेवाले मछियारे की पत्नी ने आकर आनन्द की पत्नी से कहा- "क्यों बहन, तुम्हारे घर में कोई सूई मिल सकेगी? कल सबेरे ही

हमारे लोग, जाल लेकर मछलियाँ पकड़ने जा रहे हैं। जालों की मरम्मत करनी है। जाल में जो मछली पहले फँसेगी, वह मैं तुम्हारे घर भिजवा दूँगी।"

आनन्द की पत्नी ने सूई दे दी। अगले दिन शाम को जब मछियारा घर वापिस आया तो उसने अपनी लड़की के हाथ एक बड़ा मछली आनन्द के घर पहुँचवा दिया। जब आनन्द की पत्नी ने शाक बनाने के लिये उसको चीरा तो मछली के पेट में कोई शीशे जैसी चीज़ दिखाई दी। एक जौहरी ने जब उस शीशे की चीज से आनन्द के बच्चों को गली में खेलता देखा, तो उसने आनन्द से पूछा-"क्यों आनन्द ! वह शीशे की चीज़ मुझे बेचोगे ? सौ अशर्फियाँ दूँगा।"

आनन्द को झट शक हो गया कि वह शीशे की चीज़ बहुत कीमती होगी और उसने उसे बेचने से इनकार कर दिया। उसी दिन उसे ले जाकर उसने शहर में जौहरियों को दिखाया।

वह शीशे की चीज सचमुच बड़ी कीमती मोती थी। उसे एक बड़े जौहरी ने बीस हजार अशर्फियाँ देकर खरीदा। उस



धन से आनन्द ने घर-बार, जमीन-जायदाद खरीदी। रस्सियाँ पेलने के लिये उसने लकड़ी के यन्त्र बनवाये। रस्सी बनाने का कारवार बड़े जोर-शोर से शुरू कर दिया। वह भी जल्द रईस हो गया।

जब उसके मित्र नन्द और सुनन्द को मालूम हुआ कि यकायक आनन्द धनी हो गया है, तो वे उससे मिलने आये।

"क्यों मेरी दी हुई पूँजी लगाकर ही तुम धनी हुये हो न? कहो भी हाँ ?" नन्द ने पूछा।

आनन्द ने जो कुछ जैसे गुज़रा था, उसको शुरू से अन्त तक उन्हें कह सुनाया।

"देखा, भाग्य ने जब साथ दिया तो आनन्द मेरी दी हुई सुई के कारण ही इतना धनी हो गया।" सुनन्द ने कहा।

इस बार नन्द को विश्वास नहीं हुआ। उसने सोचा कि आनन्द उसी की पूँजी से रईस हुआ है और वह यह छुपाने की कोशिश कर रहा है। तीनों मित्र तब आनन्द के नये चौपाल को देखने के लिये निकले। जब वे पिछवाड़े में गये, तो उन्होंने देखा कि आनन्द के बच्चों ने पेड़ पर से एक घोंसला गिरा दिया था। उस घोंसले में उन्हें उसकी पगड़ी दिखाई दी। पगड़ी के एक छोर में एक सौ नब्बे अशर्फियाँ बँधी मिलीं।

वे तब वहाँ गये, जहाँ बैल बँधे हुये थे। उसी समय एक नौकर भुस की एक टोकरी खरीद कर लाया था। जब वह टोकरी से भुस निकालकर बैलों के सामने डाल रहा था, तो उसके हाथ में कुछ अशर्फियाँ लगीं। ये वही एक सौ नब्बे अशर्फियाँ थीं, जो आनन्द ने खोयी थी।

"जब अच्छे दिन आते हैं, तो सूई भी सौभाग्य का कारण बन सकती है।" नन्द भी सुनन्द की बात से सहमत हो गया।





जब अचानक दो हट्टे-कट्टे आदमी समरसेन पर झपटे तो वह हक्का-बक्का रह गया। उसके मुख से चूँ तक नहीं निकली। इस बीच में गुफा के सामने से शेर का भयङ्कर गर्जन सुनाई दिया। झट उन दोनों ने समरसेन को पीठ पर डाला और वहाँ से भागने लगे। उन दोनों ने ही उसे बाँध रखा था।

समरसेन कुछ कर नहीं सकता था। इसलिये आसपास का इलाका ध्यान से देखने लगा। चारों तरफ पहाड़ और घाटियाँ थीं। वे दोनों व्यक्ति पहाड़ पर से नीचे उतर रहे थे। कहीं दूर झिलमिलाते दिये जल रहे थे।

"तुम कौन हो ! मुझे क्यों यों बाँध रखा है?" समरसेन ने साहस करके पूछा।

उन दोनों ने एक दूसरे की तरफ देखा, मगर समरसेन के सवाल का जवाब न दिया। समरसेन ने वह प्रश्न फिर पूछा। तब उनमें



से एक ने सिर्फ इतना कहा कि "उसका जवाब हमारे सरदार से पूछना।"

समरसेन ने सोचा कि उनसे पूछने से कोई फायदा नहीं है। जब पहाड़ से नीचे वे घाटी में उतरे, तो उन्होंने समरसेन को नीचे रखा, और उसके हाथ-पैरों में बँधी हुई रस्सियों को खोल दिया। समरसेन को बीचों बीच रख अगल-बगल में वे दोनों आगे बढ़ने लगे।

उस प्रकार कुछ दूर चलने के बाद दिये कुछ पास नज़र आने लगे। पेड़ पर बैठ पहरा देता हुआ व्यक्ति उनको देख कर जोर से चिल्लाया- "साथी किसी को पकड़ कर ला रहे हैं। रास्ता दो!" उसके चिल्लाने के साथ और कइयों का भी चिल्लाना सुनाई दिया। यह सब देख समरसेन को अचरज ही नहीं हुआ बल्कि डर भी लगा।

आखिर उसको वे दोनों एक घर में ले गये। किवाड़ खटखटाते ही किवाड़ खुल गये। समरसेन को एक कोठरी में ले जाकर उसके हाथ-पैर फिर रस्सी से बाँध दिये। "आज रात यहाँ पड़े रहो। सवेरे होते ही तेरी खबर ली जायेगी।" कहकर वे चले गये। समरसेन रात भर सो न सका। बहुत सोचा। पर वह यह न जान सका कि इन आदमियों ने उसको क्यों बाँध रखा है। इतना उसको जरूर मालूम हो गया था कि इस द्वीप में सिवाय कुम्भाण्ड और उसके, और भी उसके समान नागरिक यहाँ बसे हुये हैं। जिन लोगों ने उसके हाथ-पैर बाँच दिये थे, उनकी वेषभूषा मे लगता था कि वे जङ्गली नहीं थे।

इसी उधेड़बुन में समरसेन ने उस कालकोठरी में सारी रात काट दी। मुर्गों ने 'कुक्कू.." करना शुरू किया। सवेरा

हो रहा था। थोड़ी देर में मन्दिरों के घण्टे सुनाई देने लगे। उसी क्षण किसी के आने की आहट भी सुनाई दी। फिर किवाड़ खुलने की ध्वनि आई।

समरसेन ने किवाड़ की तरफ देखा। दो नये व्यक्ति तलवार लिये, आँखें बड़ी करते हुये उसकी तरफ बढ़े। समरसेन ने निडर हो उनकी तरफ देखते हुये पूछा-"क्या मन्दिर में ही ये घण्टे बज रहे है?" उन नये व्यक्तियों में से एक ने हँसते हुये कहा-"ये मन्दिर के घण्टे नहीं हैं, मृत्यु के नगाड़े हैं। अगर तू व्याघ्रदत्त के प्रश्नों का ठीक उत्तर न दे पाया, तो तू समझ लेना कि आज तेरी सौ वर्ष की आयु पूरी हो गई है।"

"व्याघ्रदत कौन है? वह उससे कौन-सा भेद जानना चाहता है?" इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर सनरसेन न पा सका। उन भयङ्कर क्रूर व्याघ्रदत के अनुचरों से पूछने पर कुछ न मालूम हो सकेगा, यह समरसेन जान गया था। समरसेन के बन्धन खोले गये। व्याघ्रदत के सेवक उसको काल-कोटरी से बाहर ले आये। "मुझे कहाँ ले जा रहे हो?" समरसेन ने आखिर साहस करके उनसे





पूछा। तब उन्होंने डराते-धमकाते कहा-"हम तुझे अपने सरदार ब्याघ्रदत्त के पास ले जा रहे हैं। जरा होश सम्भालकर बात करना। समझे?"

कुछ दूर चलने के बाद सब एक बड़े मकान में घुसे। वहाँ कई हथियारबन्द सिपाही भी दिखाई दिये। उनके पास तरह तरह के शस्त्र थे।

उनको देखते ही समरसेन ने मन ही मन सोचा-"ये सैनिक नहीं है। इनके हाव-भाव वेषभूषा, बोलने चालने के तरीके से तो ऐसा लगता है, जैसे ये कोई डाकू डकैत हो।"

इतने में एक बड़ा दरवाजा खुला। सामने एक ऊँची वेदिका पर व्याघ्रदत्त बैठा हुआ दिखाई दिया। समरसेन को देखते ही वह कहने लगा-"समरसेन! मैं तुम्हारा व्याघ्रदेश की तरफ से स्वागत करता हूँ। शायद तुम्हारे पूर्वज और मेरे पूर्वज्ञ कुण्डलनी द्वीप के एक ही नगर में रहते थे। उनकी सन्तान का इस मन्त्र द्वीप में इस प्रकार मिलना देखकर क्या तुम्हें आश्चर्य नहीं हो रहा है?"

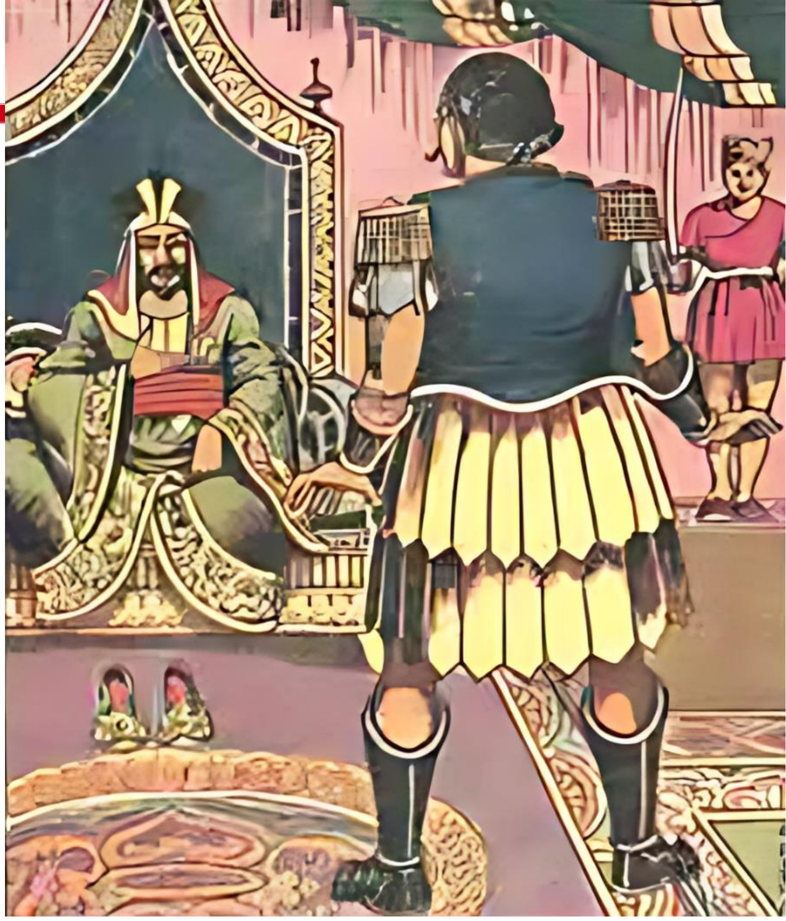
जब से समरसेन को बेहथियार कर बाँधा गया था, तब से उसको हर घटना पर आश्चर्य हो रहा था। यही आश्चर्यजनक बात थी कि आखिर उसे किसी ने क्यों बाँधा? कुण्डलिनी द्वीप का नाम ले पूर्वजों के निवास स्थान का स्मरण कराते हुये व्याघ्रदत्त की चाल-दाल को देखकर भी उसको आश्चर्य हो रहा था।

"मुझे तो यहाँ सब कुछ आश्चर्यजनक लग रहा है।" समरसेन ने निर्भय हो कहा। "मुझे आपके अनुचरों ने क्यों बाँधा था? मुझे आपके पास वे क्यों लाये हैं? आप इस द्वीप में कब आये थे? यह सब देख मुझे अचरज हो रहा है।"

"समरसेन! इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। शमन द्वीप के राजा शाक्तेय ने और देशों पर जब हमला करना शुरू किया तो हमारे देश पर भी कब्जा कर लिया। हमारे पूर्वजों में से कुछ बलवान व्यक्तियों को अपना गुलाम बना कर वह और देशों पर आक्रमण करने के लिये जहाजों में निकल पड़ा। यह तुझे शायद मालूम होगा कि उसकी मौत इसी द्वीप में हो गई थी। हमारे पूर्वज जो उसके गुलाम बना लिये गये थे, उसकी मौत के बाद आजाद हो गये और इसी द्वीप में रहने लगे। कुछ हद तक हमारे पूर्वजों की स्वतन्त्रता का कारण, शाक्तेय के दो मान्त्रिक शिष्यों का आपसी कलह और द्वेष भी था। उन्हें तो तू जानता है न?" व्याघ्रदत्त ने पूछा।

"जानता हूँ।" समरसेन ने झट जवाब दिया। व्याघ्रदत्त जो कुछ कह रहे थे, उसे सच तो लगा, पर उसे सुनकर समरसेन को आश्चर्य भी हो रहा था।

"तो अब यह बता कि उस शाक्तेय का त्रिशुल कहाँ है? चण्डीदेवी के दिये हुये उस त्रिशूल की शक्ति के



बारे में तो तू ने सुन ही रखा होगा। उसके बारे में बतायेगा कि नहीं?" व्याघ्रदत्त ने पूछा।

ये प्रश्न सुनते ही समरसेन भौंचक्का रह गया। व्याघ्रदत्त ने जो कुछ शमन द्वीप के राजा शाक्तेय के बारे में कहा था, वह स्वयं समरसेन नहीं जानता था। चतुर्नेत्र ने कभी अपने गुरु शाक्तेय के बारे में कहा जरूर था, मगर शाक्तेय के कुण्डलिनी द्वीप पर किये आक्रमण के बारे में उसने कुछ न सुना था। चण्डी देवी द्वारा शाक्तेय को दिये हुये त्रिशूल के बारे में तो वह बिल्कुल कुछ जानता ही न था।



"व्याघ्रदत! मैं आपके किसी प्रश्न का भी जवाब नहीं दे सकता हूँ। आपने शायद भूलकर मुझे पकड़वाया है। न तो शाक्तय के बारे में, न उसके दिव्यशक्ति वाले त्रिशूल के बारे में ही मैं कुछ जानता हूँ।"समरसेन ने कहा।

समरसेन का जवाब सुन व्याघ्रदत आग बबूला हो उठा-"तू बेचारा बनकर मुझे धोखा नहीं दे सकता। मैं तुझे फल दस बजे तक समय देता हूँ। इस बीच में सोच समझकर सच कहने में ही तेरा कल्याण है। वरना तेरी बोटी बोटी कटवाकर चामुण्डी देवी पर चढ़वा दूँगा। तेरी रक्षा करनेवाला यहाँ कोई नहीं है।" कहते कहते व्याघ्रदत्त गुस्से में जोर से गरजा।

समरसेन को काटो तो खून नहीं। यह बुरी तरह घबरा गया। समरसेन यह ताड़ गया कि व्याघ्रदत्त को यह मालूम नहीं कि वह ऐसी बातों के बारे में मुझसे पूछ रहा है, जिनके बारे में में कुछ नहीं जानता हूँ। परन्तु अपनी बातों पर व्याप्रदत्त को विश्वास कराना उसके बस के बाहर की बात थी।



व्याघ्रदत्त की आज्ञा सुन समरसेन को दो सैनिक एक काल-कोठरी में ले गये। वहाँ हाथ पैर बाँधकर, उसको नीचे फेंक दिया। एक तरफ रौद्र रूपी भद्र चामुण्डी की मूर्ति थी। समरसेन को वह मूर्ति दिखाते हुये एक सैनिक ने कहा-"कल सवेरे दस बजे तक हमारे सरदार को तू ने सच न बताया तो उस देवी के लिये तेरी बलि दे दी जायगी। खूब सोच समझ ले।" यह कह वे वहाँ से चले गये।

समरसेन भूख और बन्धनों के दर्द से कराहने लगा। उसे बड़ा कष्ट होने लगा। उसने सोचा कि सवेरे वह मौत से न बच सकेगा। आपत्ति के समय सिवाय चतुर्नेत्र के,

उसकी मदद करनेवाला कोई न था। परन्तु चतुर्नेत्र को कैसे मालूम हो कि वह आफत में फँसा हुआ है?

समरसेन इसी फिक्र में काफी देर तक बिना हिले-डुले पड़ा रहा। आधी रात के समय उसको किसी के किवाड़ खटखटाने का शब्द सुनाई दिया। समरसेन ने उस तरफ देखा। दो हट्टे-कट्टे मनुष्य तलवार लिये अन्दर घुसे। समरसेन को लगा कि उसको मारने के लिये व्यादत के दोनों सैनिक आ रहे हैं।

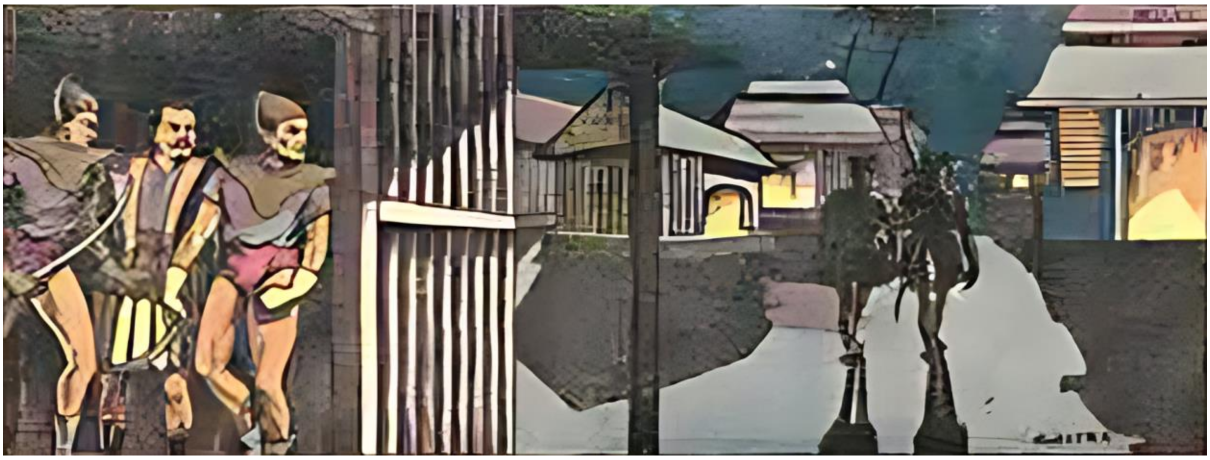
उन दोनों ने समरसेन के पास आ उसके बन्धन खोल दिये। समरसेन सोच ही रहा था किन जाने अब क्या होगा कि उन दोनों ने उसको साथ चलने के लिये कहा। वे तेजी से आगे बढ़ने लगे।

जब वे यों तेजी से आगे बढ़ रहे थे, तब उन्हें ब्याघ्रादत्त के दो अनुचर सामने से आते हुये दिखाई दिये। झट उन दोनों ने पासवाले कमरे में समरसेन को धकेला। वहाँ अन्धेरा था। उन्होंने बतलाना शुरू किया- "हम तुम्हारे मित्र हैं। व्याघ्रदत्त के सैनिक पहरे पर घूम रहे हैं। ज्योंही वे इस तरफ आयें तो हम इस अन्धेरे में से उन पर कूदकर उनका काम तमाम कर देंगे। इस लिये तैयार रहो।"

थोड़ी देर बाद स्यादत्त के पहरेदार उनके पास आये। अन्धेरे में से समरसेन और उसके साथी उन पर कूदे और उनके गले धर दबोचे। गला घोंटकर उनको किनारे लगा दिया। आवाज़ तक न हुई। तब उनकी लाश को उन्होंने पासवाले पुराने कुँए में फेंक देया।

तब उन्होंने पहाड़ी पगडण्डियों से चलना शुरू किया। सवेरे सवेरे होते वे एक गाँव में पहुँचे।

(अभी और है)





काशी में एक पण्डित रहा करते थे। उनको हर कोई 'इशारोंवाला पण्डित' कहकर पुकारा करता था। वे यह प्रचार किया करते थे कि मनुष्यों के लिये यह अच्छा होगा यदि अपने भाव भाषा द्वारा न प्रकट कर सङ्केतों द्वारा प्रकट किया करें। एक बार उस पण्डित ने राजा के पास जाकर भी यही बात कही। राजा ने मन ही मन हँसकर पूछा-"यही बात कहने के लिये ही आप मेरे पास इतनी दूर आये हैं? मैने तो बहुत पहिले ही शिवगङ्गपुर की पाठशाला में 'सङ्केत शास्त्री' की नियुक्ति कर दी है।"

मजाक में कही हुई राजा की बात को पण्डित ने न समझा। उसने सविनय कहा-"आप बहुत दूरद्रष्टा हैं। बचपन में ही अगर बच्चों को 'सङ्केत शास्त्र' का अभ्यास कराया गया, तो मनुष्यों का बहुत कल्याण होगा। मैं उस सङ्केत शास्त्री के दर्शनार्थ जा रहा हूँ। मुझे आज्ञा दीजिये।" राजा को नमस्कार कर 'इशारोंवाला पण्डित' शिवगङ्गपुर के लिये रवाना हुआ।

इशारोंवाला पण्डित शिवगङ्गपुर के लिए इस प्रकार निकल पड़ेगा; राजा ने कल्पना भी न की थी। राजा ने सोचा, अगर वह पण्डित शिवगङ्गपुर गया तो उसकी बात झूठी साबित होगी। इसलिये उसने पहिले ही शिवगङ्गपुर अपना एक नौकर भेजा।

उसने पाठशाला के कर्मचरियों से जाकर कहा कि वहाँ इशारोंवाला पण्डित आयेगा; उसे जैसे तैसे भुलावा देकर घर भेज देना। यह राजाज्ञा है। कर्मचारियों को अपनी जिम्मेवारी मालूम हो गई।

के. पी. गोयल



दो तीन दिन बाद इशारोंवाला पण्डित शिवगङ्गपुर पहुँचा। वहाँ पाठशाला के कर्मचारियों ने उनका आदर-सत्कार कर कहा-"महाराज ! हमारे सङ्केत शास्त्री देशाटन करने के लिये गये हुये हैं। महीने भर में आयेंगे। इस बीच में उनके आने की उम्मीद नहीं है।"

"खैर! इतनी दूर आकर बिना उनसे मिले कैसे जाया जाय? जब तक देशाटन समाप्त कर न आते हैं, तब तक में उनकी यही प्रतीक्षा करूँगा।" इशारोंवाले पण्डित ने कहा।

पाठशाला के कर्मचारियों ने भी जान लिया कि यह पण्डित ऐसे-वैसे छोड़ने वाला नहीं है। अगले दिन उन्होंने पाठशाला के नौकर को पण्डित का वेश पहनाया। उसको सब कुछ बताकर उन्होंने सलाह दी- "यह इशारोंवाला पण्डित जो कुछ सङ्केतों द्वारा पूछे, उसका सङ्केतों द्वारा ही जवाब देना। चाहे कुछ भी हो, अपनी जवान न खोलना।"

बाद में उन्होंने इशारोंवाले पण्डित से कहा-"महाशय ! हमारे सङ्केत-शास्त्री देशाटन करके वापिस आ गये हैं। वे उस कमरे में बैठे हुये हैं। आप उनसे मिल सकते हैं।"

इशारोंवाला पण्डित कमरे में गया। वहाँ शास्त्री शाल ओढ़कर शान से बैठा हुआ था। वह काना था। इशारों वाले पण्डित ने उसको एक अंगुली दिखाई। तब काने शास्त्री ने दो अंगुलियाँ दिखाई। फिर इशारोंवाले पण्डित ने तीन अंगुलियाँ दिखाई। तब काने शास्त्री ने गुस्से में मुट्ठी दिखाई।

तब इशारोंवाले पण्डित ने मुस्कुराते हुये एक बेर का फल काने शास्त्री को दिखाया।

तब काने शास्त्री ने रोटी का एक टुकड़ा दिखाया। तुरन्त इशारोंवाला पण्डित उठा। तो बाहर खड़े हुये पाठशाला के कर्मचारियों ने उनसे पूछा-"महाशय ! हमारे सङ्केत शास्त्री के बारे में आपकी क्या राय है?"

तब इशारोंवाले पण्डित ने कहा- "आपके सङ्केत शास्त्री तो बहुत ही योग्य और समर्थ व्यक्ति हैं। ऐसा मालुम होता है, वे बड़े तत्वज्ञानी भी हैं। मैंने यह बताने के लिये कि भगवान एक ही हैं, एक अंगुली उठाकर दिखाई। उन्होंने दो अंगुलियाँ दिखाकर बताया, 'नहीं, शिव विष्णु दो हैं।' तब यह दिखाने के लिये कि ब्रह्मा को मिलाकर त्रिमूर्ति तीन होते हैं, मैंने तीन अंगुलियों दिखाई। यह देख उन्होंने मुट्ठी बाँधकर यह दिखाया कि तीनों एक ही हैं।

फिर मैंने यह बताने के लिये कि भगवान बहुत कृपालु हैं, उनका मनुष्य मात्र को दिया हुआ बेर का फल सबसे अधिक स्वादिष्ट फल है; मैंने एक बेर का फल दिखाया। तब तत्वज्ञानी सङ्केत शास्त्री ने रोटी का टुकड़ा दिखाकर यह निरूपित किया कि रोटी ही बेर के फल से अच्छी



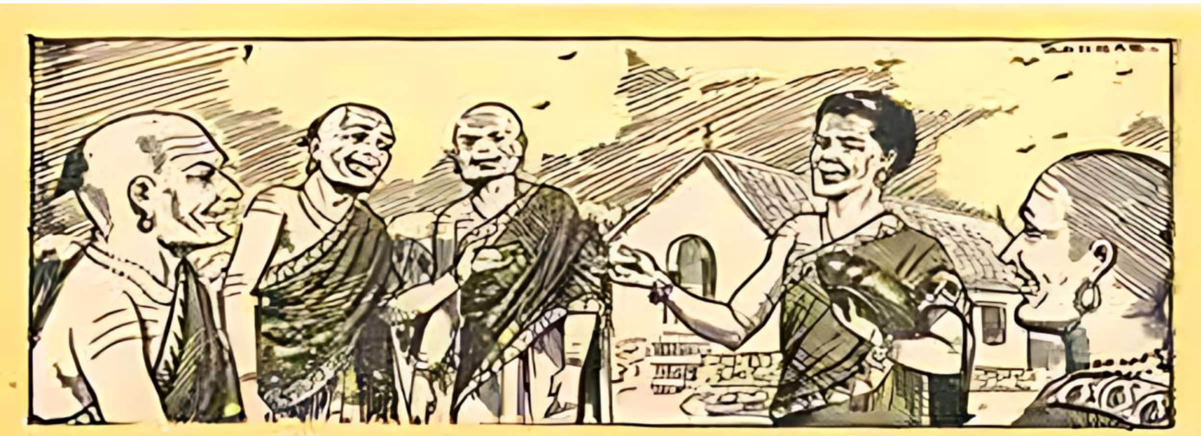
है और सबके खाने के लायक है। सर्वोपयोगी रोटी का टुकड़ा ही श्रेष्ठ हैं, उन्होंने यह परम तत्व मुझे बनाकर कृतार्थ किया।" यह वह वे चले गये। उनके चले जाने के बाद पाठशाला के कर्मचारियों ने सङ्केत शास्त्री का वेश पहने हुये नौकर को बुलाकर पूछा कि क्या गुज़रा था।

"महाराज ! वह पण्डित तो बहुत ही दुष्ट मालूम होता है। कमरे में आते ही मुझे चिढ़ाने के लिये एक अंगुली दिखाकर इशारा किया कि तू काना है न? मुझे तब भी गुस्सा न आया, फिर उसे दिखाने के लिये. मेरी दो आँखों से मेरी एक आँख ही अच्छी है; मैंने दो अंगुलियाँ दिखाई। तब यह समझाने के लिये, तेरी एक आँख और मेरी दो निराकर तीन होती हैं उसने तीन अंगुलियाँ दिखाई। उसको वैसा करता देखकर मैं आग बबूला हो गया। फिर कभी तूने ऐसा किया तो तेरी नाक पर घूँसा जमा दूँगा, यह बताने के लिये, अंगुलियाँ मोड़कर मैंने मुक्का दिखाया। मुक्का देखकर उसके छक्के छूट गये। मुझे खुश करने के लिये उसने एक बेर का फल दिखाकर मुझे घूस देनी चाही।"

"मुझे तेरी घूस की जरूरत नहीं है। तेरा बेर किसको चाहिये ? भला मेरी रोटा के टुकड़े के सामने वह क्या चीज़ हैं; मैंने एक रोटी का टुकड़ा दिखाया।

उसे देखकर उस दुष्ट ने सोचा कि कोई फायदा नहीं है, हाथ जोड़कर नमस्कार कर कमरे से बाहर चला आया।"

पाठशाला के कर्मचारी इस घटना के दो वृतान्त सुनकर ठठा मारकर हँसने लगे। हँसते हँसते उनके पेट फूल गये। जब यह बात राजा को बताई गई, तक वह भी खूब हँसा।





बहुत समय पहले पटना नगर के पास एक ब्राह्मण रहा करता था। उसके बारह वर्ष का एक लड़का था। पद चिन्हों को पहिचानने में वह बहुत होशियार समझा जाता था। पत्थर पर भी अगर कोई चले तो उसके पैरों के चिन्हों को वह आसानी से जान जाता था। क्योंकि उस में यह खास होशियारी थी, उसके साथी उसको 'सूक्ष्म दृष्टि' कहकर पुकारते थे।

जिस गाँव में ब्राह्मण रहता था, वहाँ उसका गुजारा हो नहीं पाता था। इसलिये वह अपने लड़के को लेकर पैदल पटना चला आया। लड़के को महल में ले जाकर ब्राह्मण ने राजा से निवेदन किया-"महाराज ! मेरा लड़का सूक्ष्मदृष्टि पग-चिह्नों के पहचानने में बहुत ही दक्ष है। अगर आप उसको अपने महल में रख लें, तो चोरों का डर जाता रहेगा।" वैसे तो राजा बहुत लालची था। फिर उन दिनों चोरों का डर भी बहुत अधिक था। इसलिये सूक्ष्मदृष्टि को अपने महल में रखने का राजा ने निश्चय किया। उसने ब्राह्मण से वेतन आदि के बारे में पूछा।

"महाराज ! मेरे लड़के जितना सूक्ष्मदृष्टि वाला व्यक्ति इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। इसलिये आप उसको रोज सौ मुहरों का वेतन दिखाइये।" ब्राह्मण ने कहा।

राजा को यह तनख्वाह अधिक मालूम हुई। मगर ब्राह्मण ने इससे कम लेने के लिये नहीं माना। राजा ने लाचार हो सूक्ष्मदृष्टि को सौ मुहरों के वेतन पर महल में रख लिया। यह बात सुनते ही शहर के बड़े बड़े चोरों के चेहरे फीके पड़ गये। उन्होने महल की तरफ देखना तक छोड़ दिया।



यह जानने के लिये मौका ही कहाँ आया?"

राजा ने मन्त्री से भी बातचीत की। दोनों ने मिलकर लड़के की परीक्षा लेने का निश्चय किया। रात को उन्होंने खजाने में स्वयं चोरी की। अनगिनित जवाहरात, मुहरें वगैरह, उन्होंने थैलों में बाँध ली। थैलों को लेकर राजमहल की चारों ओर तीन बार प्रदक्षिणा की। तब बगीचे में से होकर, राज महल की चार दिवारी के ऊपर से कूदकर बाहर जा, पासवाले कुएँ में थैले फेंक घर चले गये।

कुछ समय बीत गया। सूक्ष्मदृष्टि रोज महल में जाता, और अच्छा खाता-पीता। वर्गीचे में बैठ शतरञ्ज खेलता। घर जाते बक्त, रोज शाम को खजाने से सौ मुहरें ले जाया करता। कई महीने बीत गये। पर राजमहल में एक बार भी चोरी न हुई।

यकायक पटना राजा को सन्देह हुआ-"यह ब्राह्मण का लड़का, जो रोज सौ मुहरो का वेतन पा रहा है, वस्तुतः वह चिन्हों को पहचान सकता है कि नहीं, अभी तक तो यह साबित हुआ नहीं है। सिवाय उसके पिता के कथन के, और कोई प्रमाण भी नहीं है। अगर चोरी हुई तो वह चोरों को पकड़ सकता है कि नहीं,

सवेरे यह बात फैल गई कि खजाने में चोरी हो गई है। राजा और मन्त्री ने सूक्ष्मदृष्टि को बुलाकर आज्ञा दी कि चोर और चोरी गये हुये माल को पकड़कर दिखाये। सूक्ष्मदृष्टि पहले-पहल खजाने में गया।

उसको न केवल दो व्यक्तियों के पद-चिन्ह ही दिखाई दिये, अपितु उनके पैरों की रेखायें भी साफ साफ दिखाई पड़ी। उनके आधार पर उसको मालूम हो गया कि राजा और मन्त्री ने उसको परखने के लिये ही चोरी की यह चाल चली है। पर चूँकि

चोरी गये माल का पता लगाना था, इसलिए वह पैरों के चिन्हों को देखता देखता चलता गया। वह भी राज महल के चोरों ओर तीन बार घूमा। बाद में चार दिवारी फाँदकर कुएँ के पास गया।

"इस कुएँ में चोरी गया माल मिल सकता है; चूँकि चोरों के पद चिन्ह यहाँ से फिर राज महल की ओर जाते हैं।" सूक्ष्मदृष्टि ने कहा।

झट राज सेवक कुएँ में कूदकर थैलों को बाहर निकाल लाये।

"वाह ! तुम तो खूब अक्लमन्द हो। पर अभी तक तो सिर्फ चोरी के माल का ही पता लगा है। चोरों का भी तो पता लगाओ।" राजा ने सूक्ष्मदृष्टि से कहा।

"महाराज ! जाने दीजिये। चोरी का माल अब मिल ही गया है। चोरों की फ्रिक्र मत कीजिये।" सूक्ष्मदृष्टि ने कहा।

"नहीं, वैसा न होगा। चोरों को पकड़ने के लिये ही तुम्हें रोज सो मुहरों का वेतन दिया जाता है।" राजा ने कहा।

"महाराज ! इससे पहले कि चोरी का माल कहाँ है, मैंने पदचिह्नों को देखकर यह जान लिया था कि चोर कौन हैं।" सूक्ष्मदृष्टि ने कहा।

"तो बताओ, वे कौन है? उनको तुरन्त दण्ड दूँगा।" राजा ने सूक्ष्मदृष्टि के सामर्थ्य का विश्वास न करते हुये कहा।

"आप मुझसे क्यों कहने के लिये कहते है? दो ने मिलकर यह चोरी की है। उन दानों में आप एक हैं और दूसरे महामन्त्री।" सूक्ष्मदृष्टि ने कहा।

सूक्ष्मदृष्टि की बुद्धिमत्ता को देखकर, राजा ने उसका वेतन दुगुना कर दिया।



तीन पण्डित



एक गाँव में चार नवयुवक रहा करते थे। वे छुटपन से साथी थे। उनमें से तीन पण्डित के पास शिक्षा पा सब विद्याओं में पारङ्गत हो गये। एक काला अक्षर भैंस बराबर ही रह गया। उसको यद्यपि शास्त्र बगैरह नहीं आते थे, तथापि यह लौकिक ज्ञान में बहुत होशियार था।

सब विद्याओं को सीखकर तीनों नवयुवक देशाटन के लिये निकले। राजा-महाराजाओं के पास अपना पाण्डित्य दिखाकर वे धन-धान्य कमाना चाहते थे। उनके साथ साथ चौथा नवयुवक भी निकला। कुछ दूर जाकर उन तीन पण्डितों को चौथे व्यक्ति का साथ आना न भाया। सब शास्त्रों में निखट्टू यह भला हमारे साथ क्यों?" उन लोगों ने सोचा।

"अरे भाई! जा, तू वापिस जा। तुझ जैसा भोन्दू इस संसार में कोई न होगा। इस लिये तेरे लिये राजाओं का आश्रय मिलना असम्भव है।" उन्होंने बताया।

तिस पर चौथे नवयुवक ने उनको मनाते हुये कहा-"मुझे भी साथ आने दो। हम सब छुटपन के साथी जो हैं। अगर मुझे राजा के यहाँ आश्रय न मिला, तो क्या हुआ? मित्रों का स्वागत सम्मान होता देख सन्तुष्ट हो लूँगा।"

उन तीनों ने सोचा कि उससे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल है, उसको चुपचाप साथ आने देया। कुछ समय बाद चारों के चारों एक जङ्गल में पहुंचे। वहाँ उन्हें शेर

कुमारी बसुन्धरा

का एक अस्थिपञ्जर दिखाई दिया। उसको देखकर उन तीनों में से एक शास्त्रज्ञ ने रुककर कहा-"यह जो अस्थिपञ्जर दिखाई दे रहा है, हो न हो वह शेर का है।

हमें अपने पाण्डित्य को परखने का भला इसमे अच्छा मौका कब मिलेगा? मैं अभी इस बिखरी हड्डियों को जोड़-जाड़कर एक अच्छा सा अस्थिपञ्जर तैयार करता हूँ।"

उसने हड्डियों को मिला जुलाकर शीघ्र ही एक अस्थिपञ्जर तैयार कर दिया। तब दूसरे पण्डित ने कहा-"मैं इस अस्थिपञ्जर में अपनी मन्त्र शक्ति द्वारा हाड़-माँस रखता हूँ।" उसने अपने निश्चय के अनुसार अस्थिपञ्जर में हाड़-मांस डाल दिया।

तब तीसरे पण्डित ने दूसरों को हटाते हुये आगे आकर कहा-"मैं शेर में प्राण डाल दूँगा।"

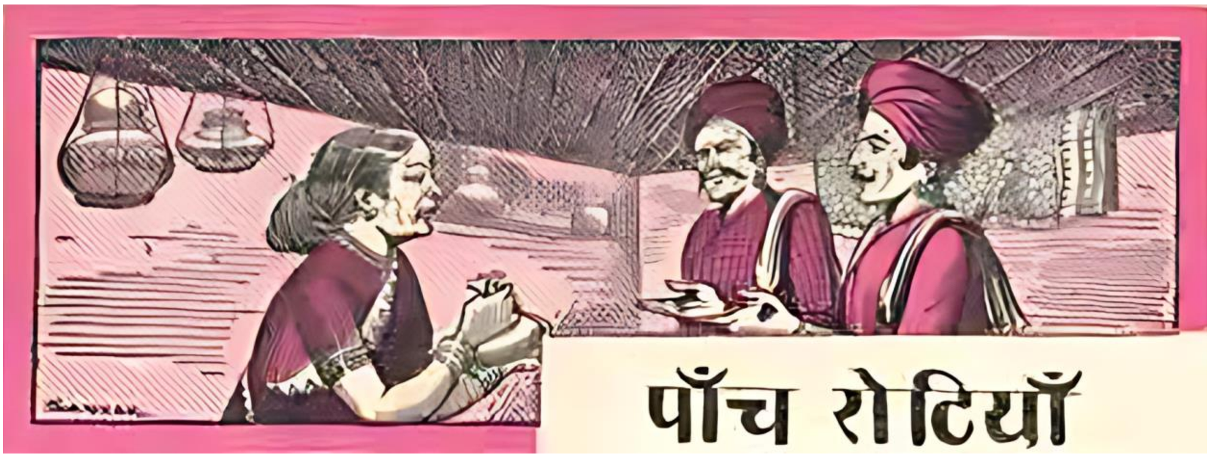
उनकी बातें सुन चौथा नवयुवक घबरा गया। उसने तीसरे पण्डित के पाँव पकड़ते हुये कहा-"यह तो तुमको मालूम ही है कि शेर क्रूर जन्तु है। उसको प्राण देना बहुत खतरनाक काम है।"

तीसरे पण्डित को उसकी बातें जँची नहीं। "तू चाहता है कि मैं अपनी सीखी हुई विद्या का उपयोग न करूँ? तेरा क्या इरादा है? इतनी मेहनत करके जो कुछ सीखा है, वह भला कब काम आयेगा ?" उसने चौथे नवयुवक को कहा।

"खैर ! तुम्हारी मर्जी ! पहिले मुझे पेड़ पर चढ़ने दो।" कहता हुआ चौथा नवयुवक पेड़ पर चढ़ गया।

तब तुरन्त तीसरे पण्डित ने शेर में मन्त्र- शक्ति द्वारा प्राण डाल दिये। वह शेर गरजता हुआ तीनों पर कूदा और उसने उनका काम तमाम कर दिया।





पाँच रोटियाँ

एक बार हीरासिंह और रामलाल नाम के दो राहगीर कहीं दूर जाने जाते एक गाँव में एक गरीब बुढ़िया के घर मिले। जब वे सवेरे उठकर जाने लगे, तो बुढ़िया ने उन दोनों को जौ की रोटियों की पोटली बाँध कर दी। हीरासिंह कुछ उदार दिल का आदमी था, परन्तु रामलाल काफी कञ्जूस था। इसीलिये गरीब बुढ़िया ने हीरासिंह की पोटली में तीन रोटियाँ रखी थीं, और रामलाल की पोटली में केवल दो ही। कुछ दूर तक दोनों का रास्ता एक ही था। हीरासिंह और रामलाल दोपहर होते होते तालाब के किनारे एक पेड़ के नीचे पहुँचे। जब उन्होंने तालाब में हाथ-मुँह धोकर, रोटी खाने के लिये पोटलियाँ खोली तो देखा कि हीरासिंह की पोटली में तीन रोटियाँ थी और रामलाल की पोटली में दो ही।

"देखा, गरीब बुढ़िया ने पक्षपात किया है। मेरी पोटली में सिर्फ दो ही रोटी रखी हैं।" रामलाल ने कहा।

हीरासिंह ने हँसकर कहा-"क्या हम दो रोटी भी खा सकेंगे? खैर, खाओ भी। अगर खाने की इच्छा हुई, तो दोनों पाँचों रोटियाँ आपस में बराबर बाँट लेंगे। मुझे तो ऐसा करने में कोई एतराज नहीं है।"

वे भोजन करने के लिये बैठे ही थे कि कहीं से पेड़ के नीचे केवलसिंह नाम का तीसरा राहगीर भी आ पहुँचा।

"भाइयो ! मैं मूख से मरा जा रहा हूँ। यदि आपने मुझे भी बचाकर कुछ दिया तो मैं आपका उधार नहीं रखूँगा।" केवलसिंह ने कहा।

"आओ, तुम भी हमारे साथ खा लो। हमारे पास की रोटियाँ तीनों के लिये काफी होंगी।" हीरासिंह ने कहा।

रामसुख पाण्डे

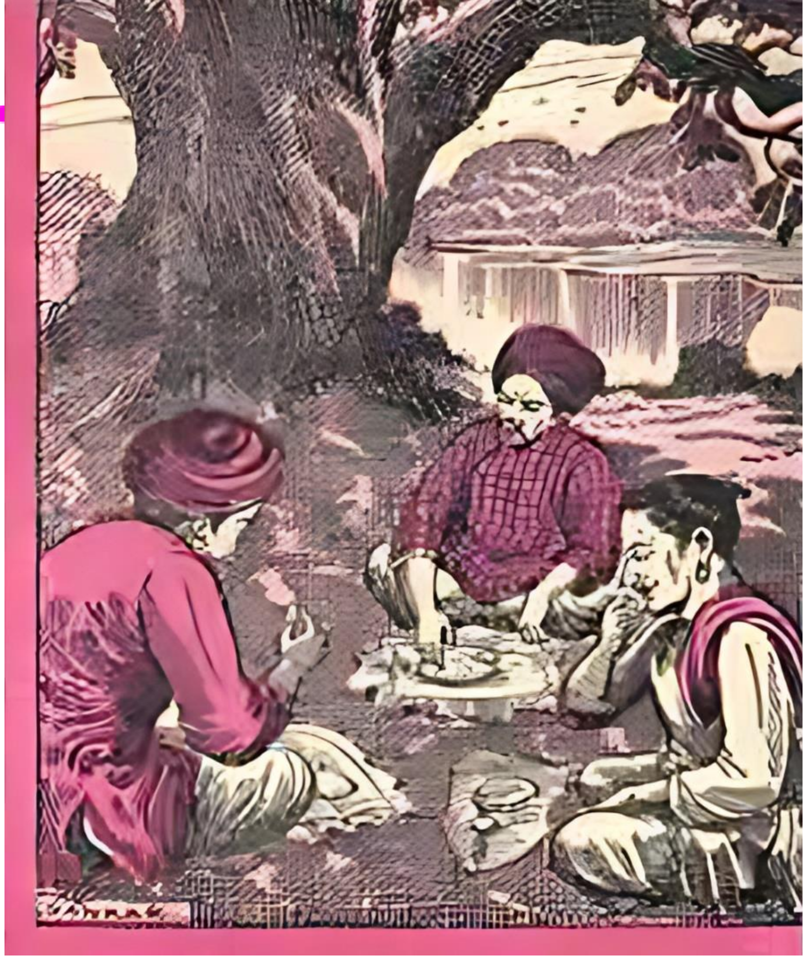
उसके पूछते ही केवलसिंह भी उसके साथ बैठ गया। रोटियों को तीनों ने आपस में बाँटकर खाया और तालाब से पानी पी लिया। केवलसिंह ने दोनों के सामने अपनी कृतज्ञता प्रकट की, और जाते जाते हीरासिंह के हाथ में पाँच आने रखता गया। हीरासिंह ने बहुत मना किया, पर केवलसिंह ने न माना। वह अपने रास्ते पर चला गया।

हीरासिंह ने पाँच आनों में दो आने निकालकर रामलाल को देते हुये कहा-"यह लो, यह तुम्हारा हिस्सा है। मेरी तीन रोटियाँ थीं, और तुम्हारी दो। इस कारण तुमको दो ही आने मिलना सही है।"

"यह तो सरासर अन्याय है। केवल सिंह को हमने रोटियाँ बेची थोड़ी थी? वही कृतज्ञतापूर्वक हमें पाँच आने की रकम दे गया है। उसमें आधी तुम्हारी और आधी मेरी। मुझे दो पैसे और मिलने चाहिये। दो।" रामलाल ने कहा।

हीरासिंह को दो पैसे की परवाह न थी। परन्तु रामलाल ने जब कञ्जूसी दिखाई तो उसे गुस्सा आ गया।

"अच्छा तो चलो, हम जाकर पास के गाँव में किसी पञ्चायतदार से फैसला



करवा लें। तुम जो कह रहे हो, मुझे ठीक नहीं लग रहा है।" हीरासिंह ने कहा।

दोनों पैदल एक गाँव में पहुँचे। वहाँ एक पञ्चायतदार से अपना झगड़ा पूरी तरह कह सुनायी।

पञ्चायतदार ने दोनों की बात बड़े ध्यान से सुनी। रामलाल की ओर देखते हुये उसने कहा-"अगर सच कहा जाय तो केवलसिंह के पाँच आनों में से चार आने हीरासिंह को मिलने चाहिये। तुम्हारे हिस्से में केवल एक आना आता है। इसलिये तुम हीरासिंह को एक आना दे दो।"

यह फैसला सुन रामलाल भौंचक्का रह गया। उसने सोचा था कि पञ्चायतदार उसको आधा आना दिलवायेगा। अब उसको एक आना देने के लिये कह रहा है।

"महराज ! यह भी क्या न्याय है? रोटियों की संख्या से भी यदि देखा जाय तो मुझे कम से कम दो आने मिलने चाहिये।" कञ्जूस रामलाल ने कहा।

"हाँ, मैंने जो फैसला दिया है, वही ठीक है। यह भी बताता हूँ कि यह क्यों ठीक है। पाँच रोटियों को तीन में कैसे बाँटोगे?" पञ्चायतदार ने पूछा।

"अच्छा, एक रोटी के तीन तीन टुकड़े किये। और पन्द्रह कुकड़ों को तीनों में पाँच पाँच कर के बाँट दिये।" रामलाल ने कहा।

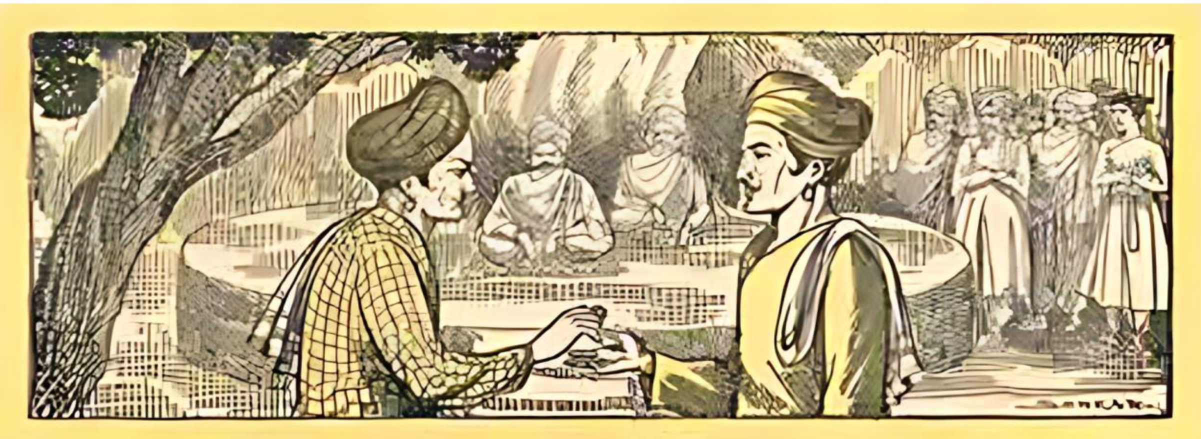
"तेरी रोटियों के कितने टुकड़े किये गये?" पञ्चायतदार ने पूछा।

"जी हुज़ूर! छह।" रामलाल ने जवाब दिया।

"उनमें से पाँच तूने खाये थे, और एक केवल सिंह को दिया था। हारासिंह की तीन रोटियों के नौ टुकड़े हुये। उनमें से पाँच तो उसने खुद खाये और चार केवलसिंह को दे दिये।

केवलसिंह ने अपने पाँच दुग्ड़ों के लिये पाँच आने दिये। उनमें से सिर्फ एक टुकड़ा ही तेरा था, बाकी सब हीरासिंह के थे। इसलिये केवलसिंह के पाँच आना में से हीरासिंह को चार आने मिलते हैं और तुझे एक आना।" पञ्चायतदार ने यों समझा समझाकर बताया।

रामलाल दो आनो में से एक आना हीरासिंह को दे अपने लालच को कोसता हुआ चला गया। हीरासिंह भी पञ्चायतदार की कुशाग्र बुद्धि की प्रशंसा करता हुआ, अपने रास्ते पर चला गया।





एक गाँव में एक विधवा रहा करती थी। जब उसके पति की मृत्यु हुई, तब उसकी दो सन्तान थी; बड़ा लड़का और छोटी लड़की।

उसे धौंस जनाने में बड़ा मजा आता था। फिर उसकी जबान भी कोई मीठी न थी। पास पड़ोस में वह चुड़ैल बदनाम थी।

कुछ सालो बाद लड़का बड़ा हुआ। विधवा को इच्छा होने लगी कि घर में जल्दी बहू आये और वह उस पर अधिकार चलाये। परन्तु कौन माँ-बाप अपनी लड़की को उस चुड़ेल का बहू बनायेगा? उसने बहुत कोशिश की, इधर-उधर खोजा। पर कोई भी अपनी लडकी देने के लिए तैयार न हुआ। आखिर उसके रिश्तेदार ने अपनी लड़की देना स्वीकार कर लिया।

लड़की को देखने के लिये विधवा घर से निकली। लड़की उसको जँची भी। उसने सम्बन्ध पक्का कर लिया। बाद में लड़की की माता से बातचीत करते हुए विधवा ने उत्सुकता से पूछा-"क्यों जी ! लड़की को कौन सी चीज अच्छी लगती है? उसे क्या खाने का शौक है ?"

"लड़की को आम का अचार और कच्चे पापड़ खाने का शौक है। अब भी जब कभी मैं पापड़ पेलने बैठती हूँ, तो चुपचाप आ जाती है, और कभी इस तरफ से थोड़ी पिसी दाल लेती है, तो थोड़ी उस तरफ से। मेरे पापड़ खतम करते करते कम से कम वह दस पापड़ की दाल हजम कर जाती है।" लड़की की माँ ने प्यार से कहा। लड़की ने पास खड़े होकर उनकी बातचीत को सुन लिया। वह यह सोच खुश होने लगी कि उसकी सास उसके लिये अचार और पापड बनायेगी।

नरेन्द्रकुमार गुप्त



एक दिन, शुभ मुहूर्त में विवाह सम्पन्न हुआ। कुछ दिनों बाद बहू घर में आ गई। सास जितनी चुड़ैल थी, उतनी कञ्जूस भी थी। बहू के घर आने के बाद वह और उसका लड़का रोज़ अचार लेकर खाया करते। परन्तु एक दिन भी भूलकर उसने बहू को अचार नहीं दिया। यही नहीं, वह हमेशा उसको बुरा-भला कहती रहती।

खड़े हो तो गलती, बैठो तो गलती, अच्छे कपड़े पहने तो गल्ती, गहने लगाओ तो गलती ! उसको एक भी त्योहार मनाने की छूट न थी। और तो और, सास के सामने पति से बातचीत करते भी वह घबराती थी। सास को देखते ही बहू का खून सूख सा जाता। अलावा इसके, उसका पति अपनी माँ के हाथ में कठपुतली सा था। वह जैसे तैसे, भाग्य को कोसती हुई, नाना कठिनाइयों को झेलती हुई अपना समय काट रही थी।

इस तरह चार वर्ष गुज़र गये। विधवा की लड़की सयानी हो चुकी थी। वह भी विवाह के लायक हो गई थी। उस लड़की के लिये सौभाग्य से एक जगह वर भी मिल गया था। विवाह के लिये दिन भी निश्चित हो गया था।

अभी शादी को चार दिन थे। सास ने बहू से हर तरह का काम करवाया। एक क्षण भी साँस न लेने दिया। जरूरी अचार बनवाये। पर सास ने स्वयं पापड़ पेलने का और आम का अचार बनाने का निश्चय किया। बहू को वे दोनों अच्छी जो लगती थीं। इसलिये वह चुड़ैल चाहती थी कि बहू उन दोनों का स्वाद तक न देखे। उसने उसी दिन तेल मँगाया, नमक, मिर्च मिलाया। मिर्च के मारे उसके हाथ जल रहे थे, पर वह अपनी ज़िद की

पक्की थी। उसने स्वयं अचार बनाया। अगले दिन पापड़ बेलने की ठानी। यह सब बहू देख रही थी।

उस रात को बहू अपने पति से इस प्रकार कह रही थी- "आपकी माँ क्यों इतनी ईर्ष्यालु है? अचार बनाने के लिये मुझसे दुनियाँ भर के काम तो करवा लिया, पर जब अचार की बारी आई तो उसे स्वयं ही बना लिया। मुझे अचार का शौक जो है ! कल पापड़ बनायेंगी। मुझे पापड़ के लिये पीसी हुयी दाल बड़ी अच्छी लगती है। हो सकता है, दूसरों के साथ कभी अचार खाने का मिल जायेगा। पर कल पापड़ बन जायेंगे, और मेरे लिये एक टुकड़ा भी न बचेगा। अब क्या किया जाय?"

"मुझे कुछ नहीं मालूम। जो कुछ तू करना चाहती है, कर ले।" पति ने बिगड़ते हुये कहा।

"मुझे एक तरीका सूझ रहा है। मैं वैसे ही करूँगी। जब आपकी माँ ओखल में दाल कूट लेगी, उसे धोने का काम तो उसमें तो मुझे ही दिया जायगा। उसमें तो कम से कम थोड़ा-सा मसाला पिसा रह ही जायगा। उस मसाले को खरोचकर



खा लूँगी। इसके अलावा मसाला मिलने का और कोई उपाय सूझ नहीं रहा है।" बहू ने कहा।

बाहर बरामदे में खड़े होकर सास ने उन दोनों की बातचीत सुन ली। "अरे, बाप रे बाप! तो यह है इसकी चाल! मैं कोई ऐसी-वैसी बुड़बुक नहीं हूँ।" सोचती सोचती वह रसोई में चली गई। उसी रात पापड़ के लिये मसाला ओखल में कूटकर तैयार कर लिया। "ओखल भी धोये देती हूँ, यह खरोंचकर खायेगी क्या?" यह सोच वह ओखल धोने गई। परन्तु वह कञ्जूस थी न? अगर ओखल में लगे मसाले

को उसने ही खरोंच खरोंचकर निकाल लिया, तो एक और पापड़ बन जायगा; उसने सेचा। यह सोच, जब यह ओखल को खरोंच रही थी, मसाला तो मिला नहीं, खरोंचते खरोंचते नाखूनों में बुरी तरह दर्द होने लगी। हाथ जलने लगे। तब सास ने सोचा-"इसका तरीका यह नहीं है। इसमें पड़े मसाले को मैं ही चाट लूँगी। उससे मेरा पेट तो भरेगा ही और उसके पेट में कुछ न पहुँच सकेगा।" इस तरीके को अच्छा जान, खुशी खुशी उसने झट अपना मुख ओखल में रख दिया। रखते ही सिर ओखल में फँस गया। निकालो तो न निकले। करे तो क्या करे? चिल्लाना चाहा, पर मुख ओखल के अन्दर था, और बाहर निकल नहीं रहा था। खैर! वह कोसती कोसती बैसी ही पड़ी रही। उसका कराहना कौन सुनता? लड़का और बहू मजे से सो रहे थे।

सवेरे मेहतरिन आई। वह चिल्लाई- "क्यों माई ? यह क्या हो गया है?" वह ओखल के पास गई, जहाँ सास का सिर फँसा हुआ था। यह देख उसने लड़का और बहू को जोर से पुकारा। उन्होंने आकर जब देखा तो वे भी दङ्ग रह गये। उन दोनों ने उसका सिर निकालने की बहुत कोशिश की, पर कुछ फायदा नहीं हुआ। तब मेहतरिन ने सलह दी "बाबूजी ! ऐसा काम न चलेगा। आप एक बार ठीक माँ की पीठ पर जोर से कूदिये। झटके के साथ इनका सिर आप ही आप बाहर आ पड़ेगा।" लड़का उसकी सलाह के अनुसार माँ पर कूदा। झट सास का सिर बाहर निकल पड़ा।

मुख पर सूजन थी, पीठ में भी सख्त दर्द। विवाह के बाद भी वह चादर ओढ़े पलङ्ग पर पड़ी रहती।





पुराने ज़माने में एक नवाब था। उसको किसी चीज की भी कभी न थी। क्या धन, क्या हाथी, क्या घोड़े, क्या ऊँठ, क्या सेना, सभी उसके पास थे। वह मशहूर पराक्रमशाली भी था। उसके धन-न्याय की शोहरत दूर दूर तक पहुँची हुई थी, पर उसको हमेशा एक फिक्र सताये रखती।

वह छुटपन में बहुत गरीब था। उसकी एक छोटी सी झोंपड़ी थी। सिवाय माँ के इस दुनिया में उसका कोई न था। वह भूख के मारे मारा मारा फिरता था। पेट भरने के लिये, वह माँ और झोंपड़ी को छोड़ फौज में भरती हो गया था।

वह धीमे धीमे सरदार हो गया। फिर सूबेदार, बाद में सेनापति, आखिर नवाब को मारकर वह खुद नवाब बन गया। तब वह गरीबों से खौफ खाने लगा। उनको देखते ही झट उसका पारा चढ़ जाता। अगर कोई भीख माँगता देखा जाता, तो उसको मार दिया जाता। यह उसका हुक्म था।

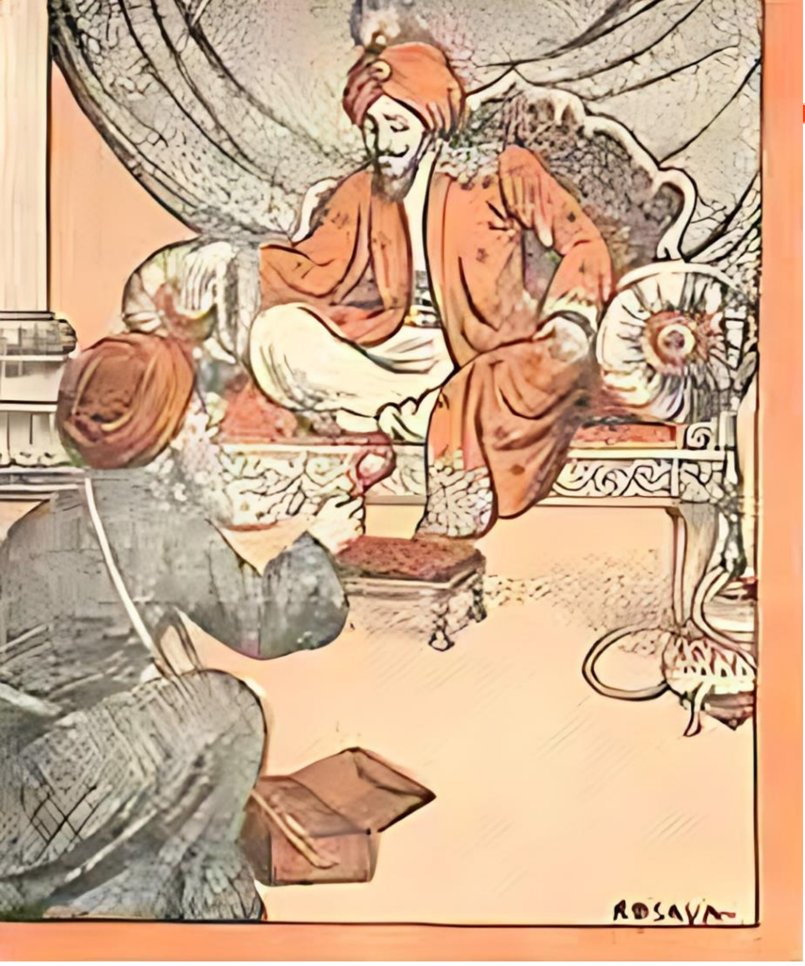
एक दिन नवाब के महल की ड्योढ़ी पर एक फ़कीर आया। नवाब को देखने के लिये उसने नवाब के पास खबर पहुँचवाई। नवाब को गुस्सा आया। उसको एक फकीर की हिमायत अच्छी न लगी।

"उसे अभी तक मारा क्यों नहीं है? वह क्यों जिन्दा छोड़ दिया गया है?" उसने अपने नौकर से पूछा।

"हुजूर! यह भीख माँगने नहीं आया है। वह आपको कुछ चीजें बेचना चाहता है।" नौकर ने अदब के साथ काँपते काँपते कहा।

"अच्छा, तो उसे अन्दर हाज़िर करो। नवाब ने रौब के साथ कहा। फ़कीर कुछ देर बाद अन्दर आया।

शीतल प्रसाद जैन



"क्यों आये हो?" नवाब ने पूछा।

"हुजूर! आपको तो मैंने पहिले ही खबर भेज दी थी। मैं कुछ माल बेचने के लिये आया हूँ।" फकीर ने कहा।

"तो तुम अपना माल दिखाओ।" नवाब ने कहा।

"हुजूर! इन सब के सामने दिखाना अच्छा न होगा, चूँकि माल जरा...." फकीर कुछ कहना चाहता था, पर कह न पाया। नवाब ने दरबार खाली करवा दिया। सबको बाहर भेज दिया। फकीर अपनी झोली में से एक गोली निकालकर कहने लगा- "हुजूर! जो कोई इस गोली को खायेगा, वह दुनिया भर का बादशाह हो जायगा।"

"मैं तो अब भी दुनियाँ का बादशाह हूँ।" नवाब ने जवाब दिया।

फकीर ने झोली में से एक पुड़िया निकालकर कहा-"हुजूर, जो कोई इसको खायेगा, वह दुनियाँ की सबसे खूबसूरत लड़की से शादी करेगा।"

"इस समय भी मेरी पत्नी दुनियाँ में सबसे ज्यादा खूबसूरत है। मेरी पत्नी से बढ़कर कोई खूबसूरत नहीं है।" नवाब ने कहा।

फकीर ने इस बार झोली में से एक छोटा-सा शीशा निकालकर कहा- "हुजूर ! यह शीशा जिस किसी के चेहरे के सामने रखेंगे, उसके मन की बातों का पता लग जायगा।"

"यह सच है, कैसे यकीन किया जाय?" नवाब ने पूछा।

" यकीन की बात तो छोड़िये, पहले तो इस शीशे में देखिये तो सही।" फकीर ने कहा।

"तो इसका दाम बताओ।" नवाब ने कहा।

"हुजूर! अगर गुस्सा न हो, तो उसका दाम बताता हूँ।" फकीर ने कहा।

"कहो! गुस्सा काहे को?" नवाब ने कहा।

"तो इसका दाम आपकी बादशाहत है। अगर आपने इसको लिया तो आपको तख्त खाली करना होगा, और मेरे कपड़े पहन कर फकीर बन बाहर जाना होगा।" फकीर ने कहा।

नवाब ने कुछ देर सोचा। फिर राज-गद्दी से उतरकर, अपनी पोशाक फकीर को देकर, फकीर के कपड़े खुद पहन उससे शीशा ले लिया।

बज़ीर और सिपहसालार तब बगलवाले कमरे में नवाब के हुक्म की इन्तजार कर रहे थे। नवाब उनके कमरे में गया। वज़ीर वगैरह नवाब को फकीर के चीथड़ों में पा अचरज में पड़ गये। उनको कुछ समझ में न आया।

नवाब ने शीशा लेकर मन्त्री के चेहरे के सामने रखा।

ताज्जुब की बात यह थी कि बजीर के मन में नवाब के लिये कोई इज्जत न थी, यद्यपि वह उसके सामने बहुत विनय दिखाया करता था। नवाब को



मारकर खुद नवाब बनने के लिये, यह सिपहसालार से साजिश कर रहा था।

नवाब को उन पर बहुत गुस्सा आया। पर उसने बाहर कुछ जाहिर न किया। लहू की घूँट पीकर वह जनाने में गया। उसकी पत्नी सहेलियों के साथ बैठी हुई थी। नवाब को देखते ही सहेलियाँ उठ कर चली गई। नवाब ने शीशा ले जाकर बेगम के चेहरे के सामने रखा।

अचरज की बात यह कि उसकी बेगम को भी उससे मोहब्बत न थी। इतने दिनों

से वह उसके सामने झूठा प्रेम दिखा रही थी।

वहाँ से जा, नवाब ने शीशे को अपने लड़कों और रिश्तेदारों के चेहरों के सामने रखा। उनमें से एक भी उससे वाकई प्रेम नहीं करता था।

वह दुनियाँ से ही ऊब उठा। तख्त तो उसने फकीर को दे ही दिया था। अब वह फकीर बनने के लिये तैयार हो रहा था।

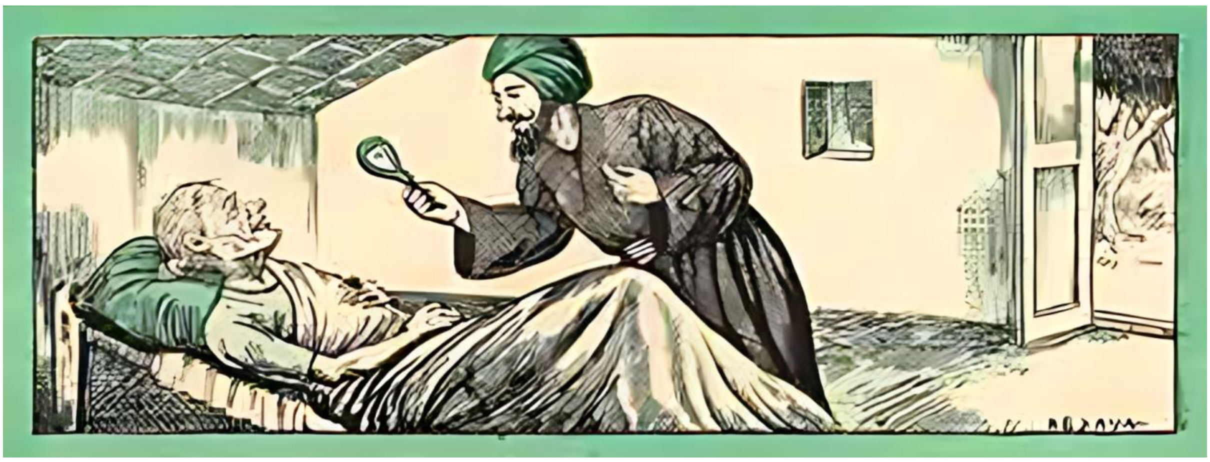
नवाब जङ्गलों में घूमता फिरता उस गाँव में पहुँचा, जहाँ वह पैदा हुआ था। तब अन्धेरा हो चुका था। अपनी झोपड़ी खोज-खाजकर वह अन्दर गया।

नवाब की माँ विस्तर पर मरने को तैयार पड़ी थी। वह धीमे-धीमे कह रही थी-"बेटा....! मेरा प्यारा बेटा....!"

नवाब ने माँ के पास जाकर शीशा रखा। उसके प्रेम में कोई दोष न था। वह सच्चा था उसमें कोई स्वार्थ न था यह निष्कलङ्क था।

नवाब अब वह व्यक्ति न था, जिसने कभी दुनियाँ का परिपालन किया था। उन सबको छोड़-छाड़कर वह सच्चे प्रेम के लिये तड़प रहा था। वह फकीर था। नवाब बच्चों की तरह रो-रोकर पुकारने लगा-"माँ....! माँ ....!"

नवाब की माँ ने, जो अब से पहले मरने को हो रही थी, आँखें खोलीं। उसकी आँखों में मोतियों की तरह दो आँसू थे। आनन्द से उसने आँखें भींच ली। बस, फिर उसने आँखें न खोली। नवाब फिर अपने राज्य को वापिस न गया। फकीर की तरह इधर उधर फिरता रहा।





दक्षिण देश में पहिले कभी समुद्र के किनारे स्थित चिञ्चिन नाम के बन्दरगाह बाले शहर में, कोई भौजिक नाम का गृहस्थी रहा करता था। उसकी तीन लड़कियाँ थीं। भौजिक ने उत्तर देश से आये हुये तीन भाइयों से उन तीनों लड़कियों की शादी कर दी। क्योंकि उनका घर आसपास न था, उसने उन तीनों भाइयों को अपने घर में ही रख लिया।

कुछ समय बाद जब बुढ़ापे में, वह गङ्गा नदी के किनारे तपस्या करने चला गया, तो तीनों भाई घर के मालिक हो गये।

उस देश में भयङ्कर अकाल आया। जीना मुश्किल हो गया। वे तीनों अपनी पत्नियों से कहे बिना ही कहीं गायब हो गये।

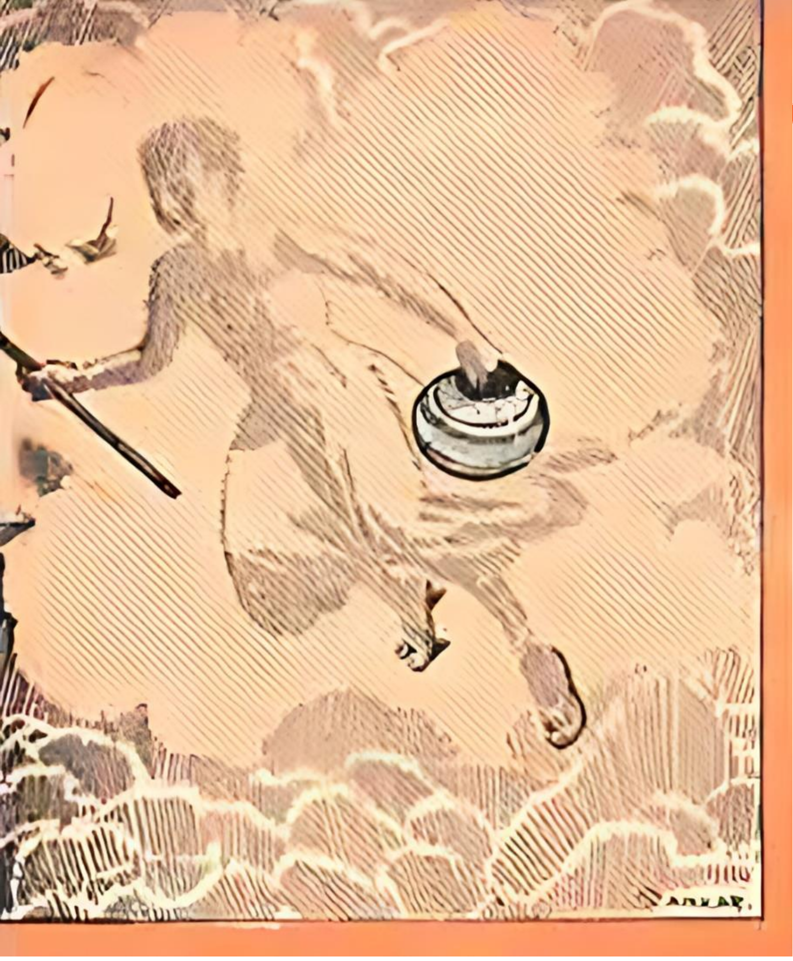
उसी समय मँझली पत्नी गर्भवती थी। जब पति घर छोड़कर भाग गये, तो तीनों बहनें अनाथ हो गई। आखिर वे अपने पिता के परम प्रिय मित्र यज्ञदत्त के घर नाना कष्टों को सहते हुये अपना जीवन बिताने लगी।

कुछ दिनों बाद मँझली बहन ने एक पुत्र को जन्म दिया। इन तीनों बहिनों का वह अकेला ही पुत्र था। इसलिए उसका वे बड़े लाड़-प्यार से लालन-पालन करने लगीं। उसका नाम उन्होंने पुत्रक रखा।

पुत्रक बड़ा हुआ। आजीविका के लिये उसने उत्तर देश जाने की ठानी। जब बिन्ध्याचल पर्वत तक पहुँचा, और एक बीहड़ जङ्गल में से जा रहा था, तो उसे दो मनुष्य घमासान हाथापाई करते हुये दिखाई दिये। वे एक दूसरे पर मुक्कों की वर्षा कर रहे थे। वे दोनों लहू-लुहान थे।

"देखने में तो तुम भाई भाई लगते हो। तुम इस बीहड़ जङ्गल में क्यों आये?

कमलारानी पचौरी



क्यों इस तरह लड़ रहे हो?" पुत्रक ने उनसे पूछा।

तब उन्होंने इस प्रकार जवाब दिया- "हम मायासुर के लड़के हैं। हमारे पिता की सम्पति खड़ाऊँ, डण्डा और पतीली का, कौन अधिकारी है, यह जानने के लिये हम देख रहे हैं कि हम में से कौन अधिक चलवान है।"

पुत्रक ने हँसकर फिर पूछा-"इस थोड़ी सी सम्पत्ति के लिये भी भला कोई लड़ता है?"

"यह क्या थोड़ी-सी सम्पत्ति है? इन खड़ाऊओं के पहनने से आदमी अदृश्य हो जाता है, और आकाश के रास्ते जहाँ चाहे, वहाँ जा सकता है। और यह पतीली जब चाहे तब मन चाहा भोजन देती है। और इस डण्डे से जो कोई चित्र जमीन पर खींचोगे, वह सजीव हो उठेगा।" उन्होंने बताया।

"तब तुम्हारा बल निश्चय करने के लिये क्या इस हाथापाई से कोई अच्छा उपाय नहीं है? तुम दोनों भागना शुरू करो। जो तेजी से भागेगा, उसी को पिता की सम्पत्ति मिलेगी।" पुत्रक ने सुझाव पेश किया।

इस उपाय को अच्छा जान, दोनों ने बाजी लगाकर भागना शुरू किया। उसी समय पुत्रक डण्डा, और पतीली लेकर, खड़ाऊँ पहिनकर, अदृश्य होकर, आकाश के रास्ते वहाँ से निकल पड़ा।

जब वह थोड़ी दूर उस तरह गया, तो उसको एक बहुत सुन्दर शहर दिखाई दिया। उस शहर का नाम था आकर्षक। शहर को देखने की इच्छा से वह उस शहर में उतरकर एक बुढ़िया के घर गया।

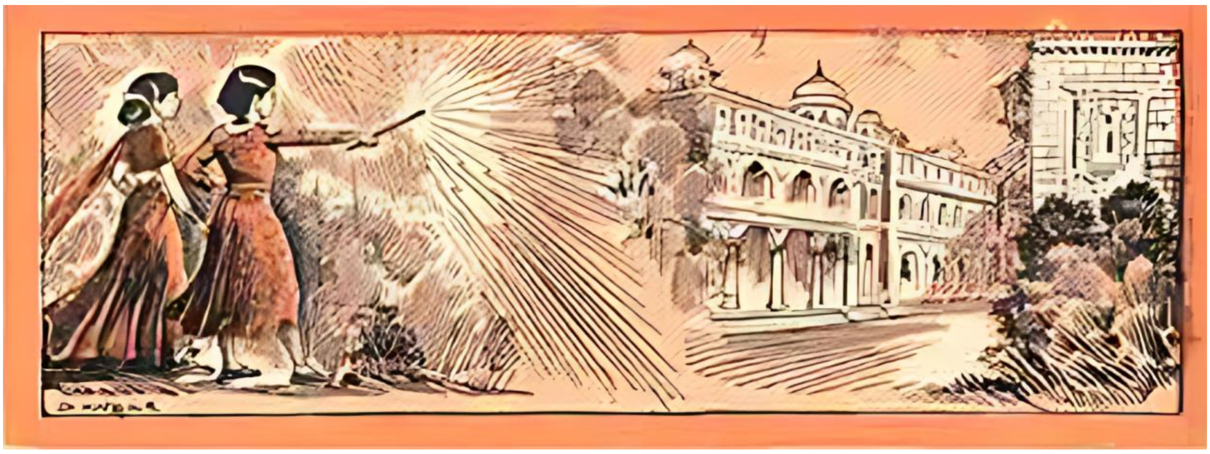
आकर्षक शहर की राजकुमारी पाटली बहुत ही रूपवती थी। चूँकि ज्योतिषियों

ने कहा था कि वह किसी अजनवी से विवाह करेगी। राजा ने डर के मारे उसको महल के छठी मञ्जिल में आराम से रख दिया था, और उसका दिन-रात पहारा देने के लिये राज-सैनिको को नियुक्त कर दिया था।

जब बुढ़िया ने यह बात बताई तो पुत्रक को इसे देखने की इच्छा हुई। खड़ाऊँ पहनकर, अदृश्य रूप में वह उसी रात राज महल की छठी मञ्जिल में राजकुमारी के कमरे में पहुँचा। पाटली का सौन्दर्य देखकर पुत्रक बहुत ही आनन्दित हुआ। कठिन कैद का जीवन अनुभव करती हुई, मुक्ति की प्रतीक्षा करती हुई पाटली को, यह बिना जाने ही कि वह कौन है, वह देवता के समान मालूम पड़ा। उन दोनों ने विवाह करने का निश्चय किया। परन्तु राजा उनका विवाह स्वीकार न करेगा, यह उनको मालूम था। इसलिये पुत्रक ने पाटली को उठाया और खड़ाऊँ पहनकर आकाश के रास्ते बाहर निकल पड़ा।

सबेरे होते होते वे बहुत दूर चले गये थे। उन्हें भूख लग रही थी। उन्होंने पतीली में से मनचाहा भोजन लेकर अपनी भूख मिटाई। चूँकि पाटली को राज-महल के ऐश्वर्य की आदत थी, वह उस निर्जन वन में न रह सकी। उसकी इच्छा पूरी करने के लिये पुत्रक ने जमीन पर डण्डे से एक महानगर का चित्र बनाया। झट वहाँ एक महानगर बन गया।

उस महानगर को पाटली और पुत्रक ने धर्म के अनुसार हमेशा परिपालन किया। वह नगर पुराणों में पाटलीपुत्र नाम से प्रख्यात हुआ। इतिहास में भी वह प्रसिद्ध हुआ। उस महानगर को ही हम आजकल पटना कहते हैं।





पूर्णिमा के दिन हम पूर्ण चन्द्र को देखें तो वह बिल्कुल सफ़ेद नज़र आयेगा। परन्तु उसके बीचों-बीच खरगोश के आकार का एक धब्बा होगा। चन्दामामा में यह खरगोश कैसे आया?

एक समय यानी बहुत साल पहले चन्दामामा बिल्कुल सफेद, चान्दी के थाल की तरह हुआ करता था। उस समय भूमि पर, एक जङ्गल में एक खरगोश, एक बन्दर, एक लोमड़ी और एक बिलाव बड़े प्रेम से रहा करते थे। खरगोश हमेशा अपने मित्रों को धर्म आदि के बारे में उपदेश देता, और पशु योनि से मुक्ति पाने के लिये प्रेरित करता रहता। तीनों मित्र खरगोश का तो सम्मान करते थे, परन्तु उसके दिये हुये उपदेशों की परवाह न किया करते थे। क्योंकि बन्दर चञ्चल मन का था, लोमड़ी चालाक थी, और बिलाव में चोरी की आदत थी।

एक बार कार्तिक पूर्णिमा आई। उस दिन सवेरे खरगोश ने अपने मित्रों को बुलाकर इस प्रकार कहा- "भाइयो। आज कार्तिक पूर्णिमा है। उपवास का दिन है। अगर आज दिन भर उपवास रख, शाम को अतिथियों को भोजन खिलाकर, चन्द्रमा का दर्शन कर यदि हमने भोजन किया तो हमें मुक्ति मिलेगी। मैं वैसा ही करने जा रहा हूँ। मेरी इच्छा है कि आप लोग भी वैसा ही करें।"

बन्दर, लोमड़ी, और बिलाव ने सिर हिलाया और कहा कि वे भी दिन भर उपवास कर, चन्द्रोदय के बाद ही भोजन करेंगे। यह कह वे अपने अपने रास्ते पर चले गये।

श्री कृष्ण खण्डेलवाल



बन्दर ने उपवास करने का निश्चय तो कर लिया था, परन्तु अगले क्षण ही उसे लगने लगा, मानों बेहद भूख उसे सता रही हो। "अरे बाप रे बाप! मैं इस भूख को भला शाम तक कैसे रोक सकूँगा? अगर जिन्दा रहा, तो अगली कार्तिक पूर्णिमा के दिन उपवास कर लूँगा।" यह सोच बन्दर फलों के पेड़ों की तलाश में इधर उधर घूमने लगा।

लोमड़ी उपवास करने के लिये ऐसी जगह गई, जहाँ शेर घूमा करते थे। चाहे कितनी भी भूख लगे, उसने निश्चय किया कि वह भोजन नहीं छुएगी। परन्तु कुछ दूर जाने पर उसको एक पेड़ के नीचे आधा खाया हुआ हरिण दिखाई दिया। कोई शेर उसको मारकर, आधा खाकर वहाँ उसको छोड़ गया था। अगर उसने उसको तब छोड़ दिया तो न मालूम, शाम को खाना मिलता है कि नहीं मिलता है। इसलिये लोमड़ी उपवास की बात भूल, उस हरिण पर हाथ साफ़ करने लगी।

बिलाव भी शाम तक सोने के उद्देश्य से एक पेड़ पर चढ़ बैठा। परन्तु पेड़ की शाखा पर उसको एक पक्षी का घोंसला और उसके बच्चे दिखाई दिये। बिलाव उपवास की बात भूल गया। उसने तत्क्षण उन बच्चों को हजम कर लिया।

चारों मित्रों में से केवल खरगोश ने नियमानुसार सायंकाल तक उपवास किया। सूर्य छुप चुका था और चन्द्रमा निकलने वाला था। खरगोश को बस एक ही बात सता रही थी। वह यह कि उसे कोई अतिथि दिखाई नहीं दिये थे। अकेले खाने से अच्छा, अतिथि को खिला कर खाना अधिक पुण्यवाला समझा जाता है। इस कारण घर के सामने खड़े हो, खरगोश अतिथियों की बाट जोहने लगा। उसी

समय चन्द्रमा, जो खरगोश की धर्मपरायणता को देख रहा था, मनुष्य रूप धारणकर खरगोश की परीक्षा करने के लिये आया।

"सवेरे से उपवास कर रहा हूँ। इस धने जङ्गल में कोई मुठ्ठी भर भोजन देने वाला भी नहीं है। क्या तुम मुझे थोड़ा खाना दे सकोगी? तुम्हारा पुण्य होगा।" चन्दामामा ने खरगोश से पूछा।

"महाराज! हमारे खाने के लिये दूब पत्ते वगैरह तो यहाँ खूब हैं; परन्तु आपके लायक भोजन यहाँ कहाँ मिल सकेगा ? इसलिये आप मुझे मारकर अपनी भूख मिटाकर मुझे मुक्ति प्रदान कीजिये।"

"कार्तिक पूर्णिमा के दिन क्या जीव हिंसा करना ठीक है? मैं तुम्हें कैसे मारूँ?" चन्दामामा ने पूछा।

"महाराज! आप उसकी फिक्र मत कीजिये। आप सूखी लकड़ियाँ लाकर आग बनाइये। मैं उसमें आहुति हो जाऊँगा। उसके बाद मुझे मजे में खा जाइये।"

मनुष्य का रूप धारण किये हुये चन्दामामा ने लकड़ियाँ इकठ्ठी कर, वहीं आग बनाई। खरगोश, भगवान का स्मरण कर उस आग में कूदा। परन्तु आश्चर्य यह कि लपटों ने खरगोश को छुआ तक नहीं।

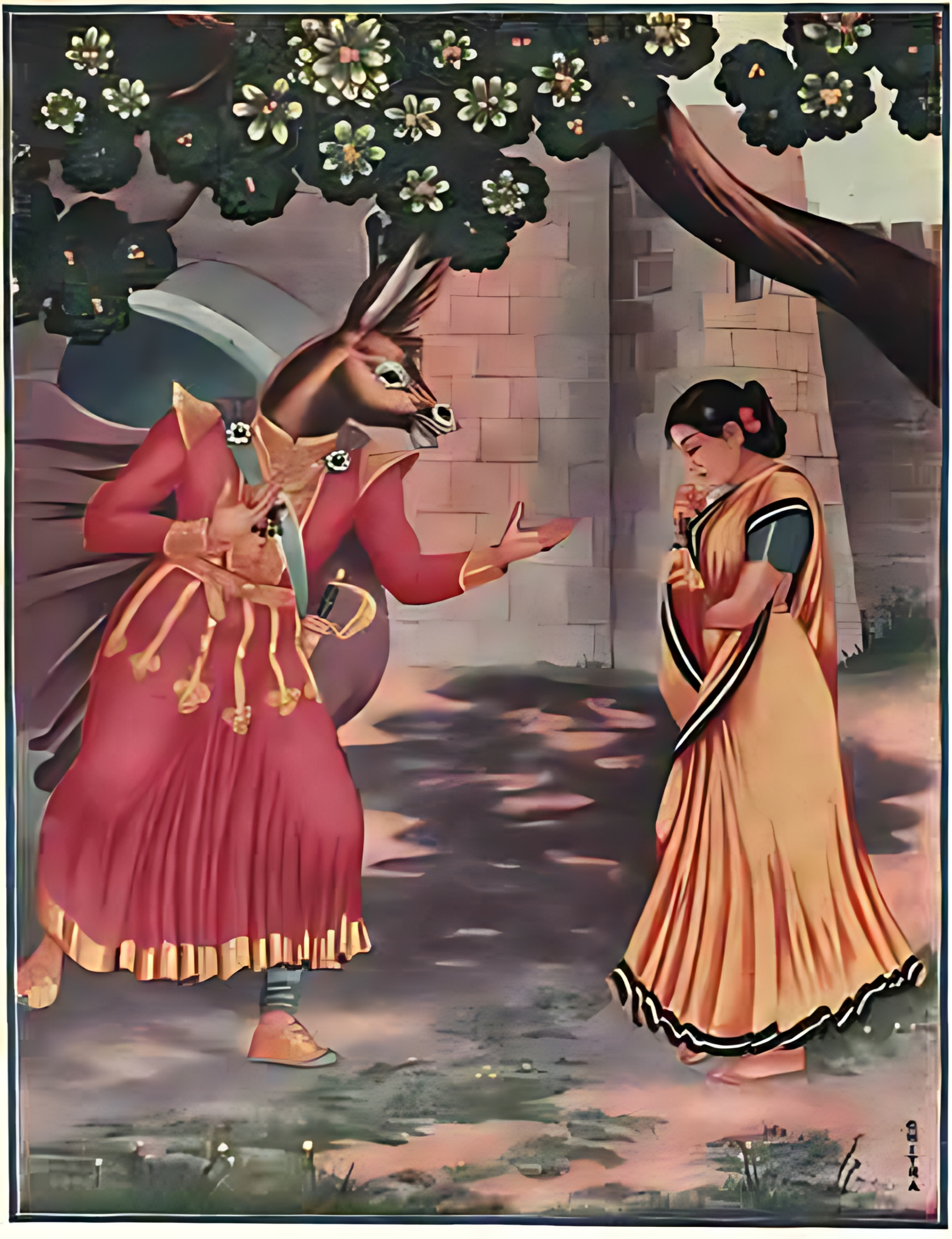
"महाराज ! मुझे आग जला नहीं रही है। मैं क्या करूँ? आपकी भूख कैसे मिटेगी?" स्वरगोश ने कहा।

झट वहाँ से आग अदृश्य हो गई। चन्दामामा ने अपने चमकीले निज स्वरूप में प्रत्यक्ष हो, खरगोश को उठा कर कहा-"तेरा जन्म धन्य है। तुझे में हमेशा अपने साथ रखूँगा। आओ...... चलो ! चलें !"

तब से खरगोश हमेशा चन्दामामा के साथ रहता है।



CHANDAMAMA (Hindi) JANUARY 1955 Regd. No. M. 8492



रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – २